* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *



वर्ष ६२ संख्या ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१४, अगस्त १९८८ ई०

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें १.५० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

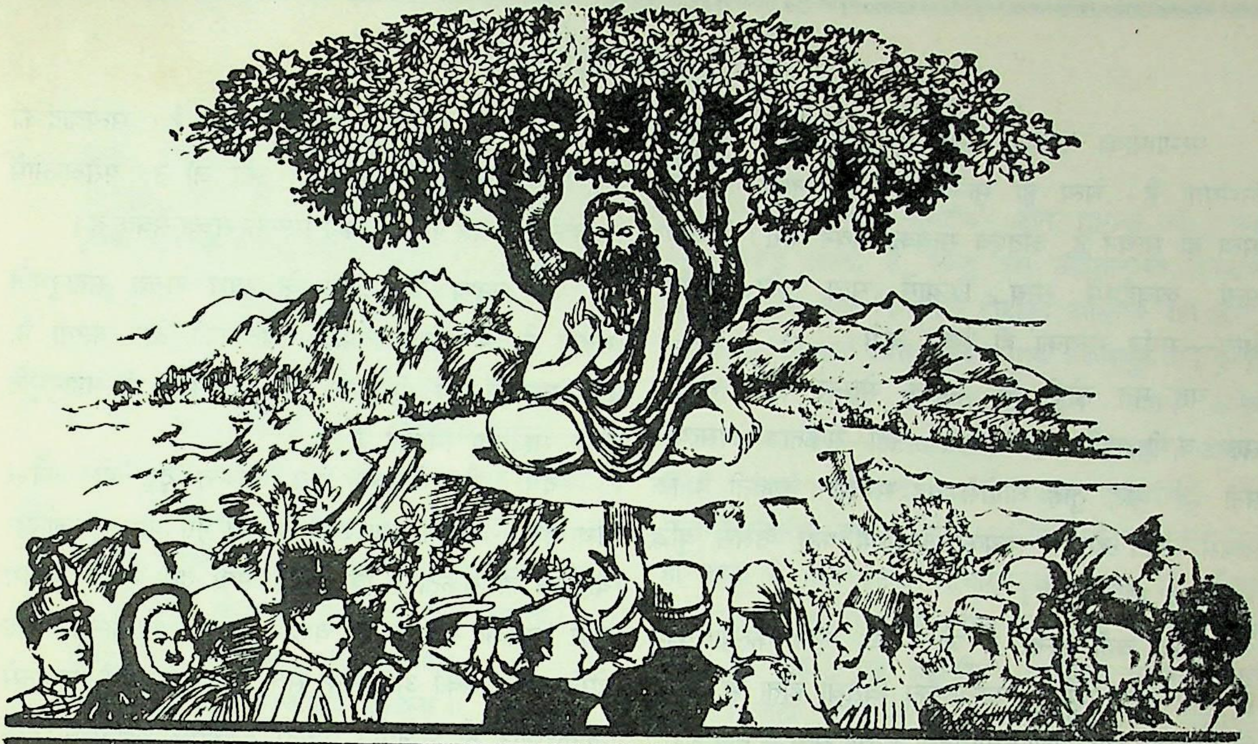
कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ३८.००रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा ९ डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित



वनसे लौटते हुए गोचारक श्रीकृष्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु॥

वर्ष ६२ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१४, अगस्त १९८८ ई० { संख्या ८
पूर्ण संख्या ७४१

वनसे लौटते हुए गोचारक श्रीकृष्ण

गमन करत रबि लखि अस्ताचल मनमोहन लै गोधन संग।
उतरि रहे गोबरधन गिरि तें, रँगे रँगीले नित नव रंग॥
त्रिविध सुगंध पवन मनभावन परसत स्याम सलोने अंग।
फहरत बसन सुमन बर माला प्रगटत प्रकृति विचित्र तरंग॥
अलि-कुल-मद-हरनी अलकावलि सिर सिखिपिच्छ मुकुट छबिसार।
नयन बिसाल रसाल चित्तहर पल-पल मोद बढ़ावनहार॥
मुरली बरसावत मधु रस अति उमगावत सब दिसि रसधार।
सोहत सुभग सुबेष नीलमनि सुषमा अमित करत बिस्तार॥

कल्याण

परमात्माका स्वरूप सत्य है। जहाँ सत्य है वहीं निर्भयता है। सत्य ही मानव-जीवनका लक्ष्य है और सत्य ही साधन है, अतएव सत्यका सेवन करो। विचारमें सत्य, व्यवहारमें सत्य, क्रियामें सत्य और वाणीमें सत्य—सर्वत्र सत्यका ही सेवन करो।

यह मत सोचो कि सत्यके सेवनसे हानि होगी। सत्य कभी हानिकारक हो ही नहीं सकता। असत्यमें सनी हुई बुद्धि तुम्हें धोखेसे यह समझाना चाहती है कि सत्यसे हानि होगी। सत्यका आचरण करो, उससे बुद्धि भी शुद्ध हो जायगी।

सत्य वही सुन्दर है जो सबके लिये कल्याणकारी हो और सत्य वस्तुतः कल्याणका विरोधी होता ही नहीं। जिस सत्यमें अकल्याण छिपा रहता है, वह सत्य ही नहीं है।

जिसके मनमें सत्य है, उसके मनमें भगवान्का प्रत्यक्ष होता है। जिसकी वाणीमें सत्य है, उसकी वाणी दैवी वाणीके समान सत्य होती है। जिसके व्यवहारमें सत्य है, उसका व्यवहार सबको सत्यकी ओर ले जानेवाला होता है।

सत्यका ध्यान करनेसे, सत्यका संकल्प करनेसे, सत्यका मनन करनेसे, सत्यकी खोज करनेसे, सत्यका प्रयोग करनेसे, सत्य वचन बोलनेसे और सत्यका महत्त्व बार-बार विचारनेसे सत्यमें श्रद्धा होती है और जिसकी सत्यमें श्रद्धा होती है, वही पुरुष सत्यका सेवन कर सकता है।

सत्यका सेवक मृत्युसे भी नहीं डरता, वह सदा दृढ़तापूर्वक सत्यको पकड़े रहता है। सत्यवादी होनेके कारण ही आजतक लोग हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिरका गुणगान करते हैं। याद रखना चाहिये—जो सत्यकी सेवा करता है, सत्य उसकी सदा रक्षा करता है।

यह सम्भव है कि झूठोंके समुदायमें सत्यवादीका एक बार अनादर हो, उसे लोग बुरा कहें, मूर्ख बतायें, परंतु सत्यके सेवकको इससे डरना नहीं चाहिये। यह तो उसके सत्य-सेवनकी प्राथमिक परीक्षा है। सत्यवादीकी तो अग्निपरीक्षा हुआ करती है और जो उन परीक्षाओंमें सत्यकी रक्षा कर पाता है, वही सत्यका सच्चा सेवक है।

× × × ×

जो मनुष्य दीन-दुःखियोंके साथ सच्ची सहानुभूति रखता है और उन्हें विपत्तिसे बचानेकी चेष्टा करता है, विपत्तिकालमें उसे भी दूसरे प्राणियोंसे सहज ही सहानुभूति और सहायता मिलती है।

दया और सेवाका भाव अत्यन्त दृढ़ हो जानेपर तथा इच्छा-शक्तिमें दया और सेवाका पूरा योग हो जानेपर यहाँतक हो सकता है कि तुम जिसपर दया करना चाहोगे तथा जिसकी सेवा करना चाहोगे, उसपर भगवान्की दया होगी और उसकी आवश्यक सेवा किसी-न-किसी साधनसे अपने-आप हो जायगी। तुम्हारी इच्छामात्र उसके दुःखका नाश करनेके लिये पर्याप्त होगी।

फिर तुम्हारे संकल्पसे ही जगत्के प्राणियोंका दुःख दूर हो सकेगा। तुम अपने स्थानपर बैठे जिस प्राणीके लिये एक बार मनमें ऐसा भाव कर लोगे कि उसकी विपत्ति टल जाय, तुम्हारी सच्ची इच्छाशक्तिके प्रभावसे भगवान् उसकी विपत्तिको टाल देंगे। जब तुम्हारे संकल्पमात्रसे दूसरोंके दुःख टल जायँगे, तब तुम दुःखरहित हो जाओगे, इसमें तो कहना ही क्या है।

दीन-दुःखियोंकी सेवा करनेवाले तो बहुत लोग हैं, परंतु उनमें ऐसी शक्ति नहीं है। इसका प्रधान कारण यही है कि उनमेंसे अधिकांश लोग ऐसे हैं जो दीन-दुःखियोंके विपत्तिनाशका ही शुद्ध मनोरथ नहीं करते। उनके मनमें दीन-दुःखियोंके दुःखनाशकी आड़में किसी अपने व्यक्तिगत लाभकी वासना छिपी रहती है। और नहीं तो मान-बड़ाईकी कामना तो प्रायः रहती ही है। इसीसे उनका संकल्प शुद्ध नहीं होता और इसीसे उनकी इच्छाशक्तिमें दया और सेवाका पूर्ण योग नहीं होता।— **'शिव'**

मनोबोध—२२

(समर्थ स्वामी रामदास महाराजकी वाणी)

नव्हे कार्यकर्ता नव्हे सृष्टिभर्ता।
परेहूनि पर्ता न लिंपे विवर्ता॥
तथा निर्विकल्पासि कल्पीत जावें।
परी संग सोडूनि सूखें रहावें॥ १९०॥

वह निर्गुण ब्रह्म न कार्यका कर्ता है और न सृष्टिका भरण-पोषण ही करता है। वह तो परात्पर परब्रह्म होता है। वह विवर्तवादके कारण सृष्टिके निर्माणमें निमित्त-कारण और उपादान-कारण दोनों ही नहीं होता। वह निर्विकल्प होता है। कल्पनाका वहाँपर अन्त हो जाता है। उसे कल्पना करके देखते जाना चाहिये, परंतु त्रिगुणोंका—सत्त्व, रज, तमका संग छोड़कर सुखी हो जाना चाहिये।

देहेबुद्धिचा निश्चयो ज्या ढळेना।
तया ज्ञान कल्पांतकाळीं कळेना॥
परब्रह्म तें मीपणें आकळेना।
मनीं शून्य अज्ञान हें मावळेना॥ १९१॥

जिसका 'मैं देह हूँ' इस देहबुद्धिका निश्चय नहीं टल सकता, उसे यह ज्ञान कल्पके अन्ततक आकलन नहीं हो सकता। जो परब्रह्म केवल निर्विकार, चिन्मय आत्मतत्त्व है, उसका ज्ञान 'मैंपन'का बोध रहते नहीं हो सकता। मनसे ज्ञानशून्यका यह अज्ञान नहीं मिट सकता।

मना ना कळे ना ढळे रूप ज्याचें।
दुजेवीण तें ध्यान सर्वोत्तमाचें॥
तया खूण ते हीन दृष्टांत पाहे।
तेथें संग निःसंग दोनी न साहे॥ १९२॥

हे मन! उसका रूप समझमें नहीं आता और न उसका वह रूप दिखायी ही देता है। वह द्वैतरहित—अद्वैत जब होता है, तभी सर्वोत्तमका ध्यान लगता है। जो सर्वोत्तम तत्त्व है, उससे अद्वैतभाव हो जाना ही उसका ध्यान करना है।

[इस निर्विकल्प-समाधिमें हीन दृष्टान्त ही उसकी ओर संकेत करता है, किंतु उस अद्वैतानुभव देनेवाली समाधिमें संग और निःसंगत्व दोनोंका अस्तित्व नहीं होता। देहभावका निरसन करते-करते मनुष्य आत्मानुसंधान करता चलता है। देहसे आत्मातककी इस यात्रामें अनेक महावाक्योंका जैसे—**'तत्त्वमसि'**, **'प्रज्ञानघनं ब्रह्म'**, **'आनन्दं ब्रह्म'**, **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**, **'अहं ब्रह्मास्मि'** तथा **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** आदि वाक्योंका अनुभवपूर्वक ज्ञान हो जाता है और इनके आधारसे वह इनसे परे पहुँचता है। वह अन्तमें आत्मानुभवके इस उच्च स्तरपर पहुँच जाता है, जहाँ **'अहं ब्रह्मास्मि'** आदिकी अनुभूति नहीं बचती। जहाँ वाणी मुग्ध हो जाती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीसे परे जहाँ अनुभव अनुभूत नहीं हो सकता, वहाँ ज्ञान ज्ञान नहीं रहता। अपने केवल अस्तित्वका बोध नहीं रहता। कल्पनाका भी कोई चिह्न नहीं रहता। पूर्ण शान्तिका एवं आत्मसुखका ब्रह्मानन्द ही जहाँ शेष रहता है, वहाँ देहसे सम्बन्ध छूट जाता है। क्रिया करते हुए भी क्रियाका जहाँ अस्तित्व ही नहीं रहता, वहाँ ऐसे पूर्णब्रह्म परात्पर सनातन पुरुषोत्तम आत्मतत्त्वका अनुभव करना ही उस सर्वोत्तमका अद्वैत स्वरूपावबोध है। यही उसका ध्यान है। यहाँ संग और निःसंग दोनों नहीं रहते।

यह जो कहा गया है कि 'वह पुरुष समस्त संसारको मारकर भी नहीं मारता', 'चलकर भी नहीं चलता', 'देखकर भी नहीं देखता'—इन वाक्योंमें उपर्युक्त पूर्णब्रह्मानुभवी संयमी योगिपुरुषका ही वर्णन किया गया है।]

(क्रमशः)

[अनु०—कु० रोहिणी गोखले]

सदा विनय और प्रेमपूर्वक ईश्वरका भजन करो। धर्मका अनुसरण और पूज्यभावसे सिद्ध पुरुषोंका समागम करो। सेवा और सम्मानपूर्वक साधुजनोंका सत्संग करो। प्रफुल्लवदनसे निर्दोष भ्रातृमण्डलके साथ रहो। अज्ञानी लोगोंके साथ दयालु-हृदय और नम्र वाणीसे तथा नौकरों और घरके लोगोंके साथ सज्जनता तथा सुशीलतापूर्वक बर्ताव करो।

अच्छा बननेका उपाय

(ब्रह्मलीन महात्मा श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज)

अच्छा बनोगे, इसकी चिन्ता क्या है?

बतलाओ, कैसे अच्छा बनूँगा?

किसीका भी दोष न देखो, इसीसे अच्छा बन जाओगे। जो दूसरोंके दोषोंको देखता है, वह उन दोषोंको आकृष्टकर स्वयं दोषमय बन जाता है। यदि सचमुच अच्छा बनना चाहते हो तो अदोषदर्शी बनो। दूसरोंके दोष देखनेके समान कोई पाप नहीं है। जो अन्याय करता है, वह तो करता ही है, तुम उसके अन्यायको देखकर, ढोल बजाकर, अपनी आँख और जीभको कलङ्कित करते हो, इसीसे रोते-कलपते हो। आँखें मिली हैं सबको भगवान्‌के रूपमें दर्शन करनेके लिये, प्रणाम करनेके लिये। जीभ मिली है श्रीभगवान्‌के नाम-रूप-लीला-गुणका गान करनेके लिये, उस आँख और उस जीभको यदि दूसरोंके दोष देखने और बतलानेमें लगाते हो तो बतलाओ, तुमसे बड़ा अभागा संसारमें दूसरा कौन है?

मुझे दूसरेके दोष दीखते हैं। तब कैसे नहीं कहूँगा?

दूसरोंका दोष देखनेसे पहले तुम अपने दोष देखो। तुम जीवनभर कितने सैकड़ों दोष कर चुके हो, अब भी करते हो, अपने दोषोंको एक-एक करके चुन-चुनकर दूर कर डालो, बस, बिलकुल निर्मल हो जाओगे, फिर दूसरोंके दोष नहीं देख पाओगे। तुम्हारे भीतर दोष है, इसीसे दूसरोंके दोष देख पाते हो। जिस दिन तुम दोषशून्य हो जाओगे, उस दिन किसीका दोष नहीं देख पाओगे। मनुष्य जिस प्रकार बारीकीसे दूसरोंके दोष देखता है, उसी प्रकार जिस दिन वह अपने दोषोंको देखेगा, उसी दिन निर्मल—एकदम दोष-शून्य हो जायगा। शिक्षित लोगोंमें भी ऐसे अभागे आदमी मिलते हैं, जो दूसरोंके लेखोंमें केवल दोष ही निकालते हैं। सम्भव है, दूसरे लेखकके लेखमें कितने ही सुन्दर भाव हैं, पर उन्हें न देखकर कहाँ दोष है, कौन लेखक कहाँ भूल करता है, वे यही खोजते रहते हैं और उसे जनसमाजमें प्रकाशित करके अपना कृतित्व प्रदर्शन करते हैं। शिव, शिव! पर ही परमेश्वर हैं, उनका दोष देखना कृतित्व नहीं, महान् अकृतित्व है।

बतलाओ, फिर कैसे हमारे दोष दूर होंगे?

न चक्षुषा मनसा वा न वाचा दूषयेदपि।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत् क्वचित्॥

(अध्यात्ममुक्तावलीधृत हारीत-गीता)

'चक्षु, मन या वाक्यके द्वारा किसीका दोष-दर्शन, चिन्तन या वर्णन न करे। प्रत्यक्षमें हो या परोक्षमें, कभी किसीकी निन्दा न करे।'

इच्छा न होते हुए भी दूसरोंके दोष दीख जाते हैं, यह दारुण रोग कैसे दूर होगा?

रजोगुण और तमोगुणसे ही दोष दीखते हैं।

गुणे प्रवृद्धे वर्धन्ते गुणा दोषजयप्रदाः।
दोषे विवृद्धे वर्धन्ते दोषा गुणविनाशनाः॥

(योगवासिष्ठ २। १६। ३२)

'संयमके अभ्यास और सात्त्विक आहार आदिके द्वारा जब सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, तब दोषपर विजय प्रदान करनेवाले गुण बढ़ जाते हैं और राजसिक-तामसिक आहार तथा असंयमसे दोषके बढ़ जानेसे गुणोंका नाश करनेवाले दोष अत्यन्त बढ़ जाते हैं।'

यथाऽऽत्मनि पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्॥

(विष्णुपुराण ३। ८। १७)

'जैसे मनुष्य अपनी और अपने पुत्रकी हितकामना करता है, उसी प्रकार जब वह सर्वभूतोंका हितकामी बनता है, तब उसके द्वारा हरि सर्वदा सुखपूर्वक तुष्ट होते रहते हैं।'

यथा पुमान् न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥

(श्रीमद्भा० ४। ७। ५३)

'पुरुष जिस प्रकार अपने सिर, हाथ आदि अङ्गोंको कभी भी दूसरेका नहीं समझता, उसी प्रकार जो मत्परायण

(भगवत्परायण) है, मुझे (भगवान्‌को) परात्पर समझता है, वह किसी भी प्राणीके ऊपर 'यह प्राणी तथा इसके सुख-दुःख आदि मुझसे भिन्न हैं'—ऐसी परकीय बुद्धिका आरोप नहीं करता।'

दोषदर्शन करना अतिशय दोषावह है—यह तो मैं समझता हूँ, तथापि दोषदर्शन कर बैठता हूँ—इससे छूटनेका क्या उपाय है?

इस युगमें उपायकी तो कोई चिन्ता नहीं है, केवल भगवान्‌का नाम लो।

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥

'अत्यन्त दुष्ट कलियुगका यह एक महान् गुण है कि श्रीकृष्णका नामकीर्तन करनेसे सारे बन्धनोंसे मुक्त होकर मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

अनुक्षण कर तुमि नामसंकीर्तन।
हेलाय लभिबे प्रिय प्रेम महाधन॥

'तुम प्रतिक्षण नाम-संकीर्तन करो, इससे प्रिय-प्रेमरूपी महाधन सहज ही पा जाओगे।'

केवल नाम लो, नाम लेते-लेते वैराग्य स्वयं आ उपस्थित होगा।

वैराग्यबुद्धिसततमात्मदोषव्यपेक्षकः।
आत्मबद्धविनिर्मोक्षं करोत्यचिरादेव सा॥

(अ० सू० धृ० महाभारत)

'विषयोंसे वैराग्य उपस्थित होते ही अपने ही दोषोंकी ओर दृष्टि जाती है और वह अति शीघ्र ('अहं-मम'रूप) बन्धनसे मुक्त कर देती है। नाम लो और सबको भगवत्स्वरूप समझकर प्रणाम करो।

उठते और बैठते, खाते, पीते, सोते सारे दिन।
सतत नाम-संकीर्तन करता, तर जाता तुरंत वह जन॥
नामरूपसे हैं जगमें अवतीर्ण स्वयं वे श्रीभगवान।
नाम-गानमें, नाम-दानमें सौंपो तुम अपने मन-प्रान॥

श्याम मेरो है

सुनकर जाकी तान, मुनि छोड़े ध्यान,
सो बेनु इठलाय, जे स्वरराज मेरो है।
पाय जाकर परस, पाप जात हैं बरज,
सो ब्रजरेनु बतराय, जे ब्रजराज मेरो है॥
तेरी सुधि पाय, छोड़ बछड़ा कूं धाय,
सो धेनु रम्भाय, जे गोराज मेरो है।
छोड़ सुर-गेह, पायी ब्रजमें जो देह,
सो नर कहलाय, जे नन्दराज मेरो है॥
ब्रजको बचाय लियो अंगुरी उठाय,
सो गोवर्धन सुनाय, जे गिरिराज मेरो है।
मेरी सुधि पाय, लियो भव ते बचाय,
सो 'गोप' समुझाय, जे गोपराज मेरो है॥

—गोपेन्द्रसिंह 'गोप'

कर्मयोगका रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कर्मयोगका रहस्य बड़ा ही गहन है। इसका वास्तविक तत्त्व या तो श्रीपरमेश्वर जानते हैं या वे महापुरुष भी जानते हैं जिन्होंने कर्मयोगद्वारा परमेश्वर (परमात्मा) को प्राप्त कर लिया है। मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये तो इस रहस्यको व्यक्त करना अत्यन्त ही कठिन है; क्योंकि कर्मयोगके रहस्यको वास्तवमें मैं अच्छी प्रकार नहीं जानता। इसके अतिरिक्त यत्किंचित्—जितना कुछ जानता हूँ उतना कह नहीं सकता और जितना कहता हूँ, उतना स्वयं काममें नहीं ला सकता, तथापि अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कर्मयोगके रहस्यका कुछ अंश प्रश्नोत्तरके रूपमें व्यक्त करनेका प्रयत्न करता हूँ। श्रीभगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २।४०)

'इस निष्काम कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है (और) उलटा फलरूप दोष (भी) नहीं होता है, (इसलिये) इस (निष्काम कर्मयोगरूप) धर्मका थोड़ा भी (साधन) जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है।'

प्रश्न—निष्काम कर्मयोगके आरम्भका नाश नहीं होता, इसका क्या अभिप्राय है? क्या एक बार प्रारम्भ होनेपर यह चालू ही रहता है, या जितना बन गया, उसका नाश नहीं होता?

उत्तर—पूर्वसञ्चित पाप, अहंता-ममता और आसक्ति आदि अवगुणोंके कारण तथा विषय-भोगोंका एवं प्रमादी विषयी पुरुषोंका सङ्ग होनेसे मार्गमें रुकावट तो हो जाती है, किंतु निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका जितना पालन हो जाता है उसका नाश नहीं होता; क्योंकि फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार समत्वभावसे किये हुए साधनके नाश होनेका कोई भी कारण नहीं है। फलकी इच्छासे किया हुआ कर्म ही फलको देकर समाप्त होता है।

प्र०—प्रत्यवाय अर्थात् उलटे फलरूप दोषका भागी नहीं होता—इसका क्या अभिप्राय है?

उ०—मनुष्य जैसे अपना उपकार करनेवालेकी सेवा न करनेसे दोषका भागी होता है तथा जैसे देव, पितर, राजा, मनुष्यादिकी सेवामें किसी कारणवश त्रुटि हो जानेपर उनके रुष्ट होनेसे उसका अनिष्ट भी हो सकता है, किंतु निष्काम कर्मयोगके पालनमें त्रुटि रहनेपर भी उसका उलटा फल अर्थात् कर्ताका अनिष्ट नहीं होता तथा न पालन करनेसे वह दोषका भागी भी नहीं होता।

प्र०—कोई-कोई प्रत्यवाय शब्दका विघ्न अर्थ करते हैं, क्या यह भी बन सकता है?

उ०—'विघ्न' अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। निष्काम कर्मयोगरूप धर्मके पालनमें विघ्न-बाधा तो आ सकती है, किंतु उसका परिणाम बुरा नहीं होता। अच्छा ही होता है (गीता ६।४०-४२)।

प्र०—यहाँ 'अपि' शब्द किस बातका द्योतक है?

उ०—जब कि इस निष्काम कर्मयोगका थोड़ा साधन भी महान् भयसे उद्धार करनेवाला है तब इसका पूर्ण साधन महान् भयसे मुक्त कर देता है, इसमें तो कहना ही क्या है।

प्र०—इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी पालन महान् भयसे कैसे उद्धार करता है?

उ०—निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी पालन संस्कारके बलसे क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर अन्तमें साधकको मुक्त कर देता है।

प्र०—जब कि यह निष्काम कर्मयोगका थोड़ा साधन वृद्धिको प्राप्त होकर ही महान् भयसे उद्धार करता है तब फिर थोड़ेका क्या महत्त्व रहा?

उ०—निष्कामभावका परिणाम संसारसे उद्धार करना है। अतः वह अपने परिणामको सिद्ध किये बिना न तो

नष्ट होता है और न उसका कोई दूसरा फल ही हो सकता है, अन्तमें वह साधकको पूर्ण निष्कामी बनाकर उसका उद्धार कर ही देता है, यही इसका महत्त्व है।

प्र०—जो लोग धार्मिक संस्थाओंमें स्वार्थ त्यागकर बिना वेतन लिये या स्वल्प वेतन लेकर तन-मनसे काम करनेवाले हैं, उनका कर्म स्वार्थरहित होनेके कारण उसे तो निष्काम कर्मयोग ही मानना चाहिये, किंतु निष्काम कर्मयोगके पालन करनेसे जितना लाभ बतलाया जाता है, उतना लाभ देखनेमें नहीं आता, इसका क्या कारण है ?

उ०—निष्काम कर्मयोगसे जितना लाभ होना चाहिये उतना लाभ अपने साधनसे होता दृष्टिगोचर नहीं होता, इस प्रकार वे सेवा करनेवाले भाई भी कहते हैं, अतः सम्भव है कि निष्काम कर्मयोगके रहस्यको न जाननेके कारण उनमें वास्तविक त्यागकी कमी है, इसीलिये वे पूरा लाभ नहीं उठा सकते, नहीं तो उन लोगोंको निष्काम कर्मयोगके साधनका जितना लाभ गीतादि शास्त्रोंमें बतलाया है, उसके अनुसार उन्हें अवश्यमेव मिलता। केवल कञ्चन, कामिनीके बाहरी त्यागसे ही मनुष्य सर्वत्यागी नहीं होता। वास्तवमें कञ्चन, कामिनीका बाहरी त्याग निष्काम कर्मयोगके साधनमें उतना आवश्यक भी नहीं है, उसमें तो भावकी ही प्रधानता है। अतः इसमें स्त्री, पुत्र और धनादिसे मिलनेवाले विषयभोगरूप सुखत्यागके साथ-साथ मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं राग, द्वेष, अहंता, ममता आदिके त्यागकी भी बड़ी आवश्यकता है। जबतक इन सबका त्याग नहीं होता, तबतक साधकको पूरा लाभ नहीं मिल सकता।

प्र०—निष्काम कर्मयोगके अनुसार क्या इन लोगोंका थोड़ा भी साधन नहीं होता ?

उ०—जो जितना त्याग करता है उतने अंशमें उसका साधन अवश्य होता है तथा लाभ भी उसके अनुसार उसे अवश्य ही मिलना चाहिये।

प्र०—जब कि कर्मयोगका थोड़ा भी साधन महान् भयसे तार देता है तो फिर अधिक न भी हो तो क्या आपत्ति है; क्योंकि उद्धार तो उसका हो ही जायगा ?

उ०—उद्धार तो होगा, किंतु समयका नियम नहीं। न मालूम इस जन्ममें हो या जन्मान्तरमें; क्योंकि वह थोड़ा-सा साधन क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर ही उद्धार करेगा। अतएव साधनकी कमीको मिटानेके लिये शीघ्र कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको तो तत्पर होकर ही प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

प्र०—कर्मयोगके थोड़े साधनसे यहाँ क्या अभिप्राय है ?

उ०—प्रथम तो कर्मयोगका स्वरूप समझना चाहिये। शास्त्रविहित उत्तम क्रियाका नाम कर्म है, उसमें आसक्ति और स्वार्थके सर्वथा त्यागपूर्वक समत्वभावका अर्थात् निष्कामभावका नाम योग है। यह निष्कामभाव ही इसका स्वरूप, प्राण और रहस्य है। इसलिये जिस कर्ममें निष्कामभाव है, उसीकी 'कर्मयोग' संज्ञा है। जिन शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंमें निष्कामभाव नहीं है, उनकी 'कर्म' संज्ञा है, किंतु 'कर्मयोग' नहीं। इसलिये सकामभावसे आजीवन किये हुए यज्ञ, दान, तप आदि ऊँचे-से-ऊँचे अनेक कर्म भी क्षणभङ्गुर फल देनेवाले होनेके कारण महत्त्वके नहीं हैं, परंतु निष्कामभावसे अल्प मात्रामें किये हुए शास्त्र-विहित कृषि, वाणिज्य, नौकरी और शिल्पक्रिया आदि साधारण कर्म भी परम कल्याणदायक होनेके कारण महान् हैं। अतएव जिसका नाम निष्काम कर्मयोग है उसका थोड़ा भी पालन अर्थात् अल्प मात्रामें किया हुआ भी वह साधन क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होकर महान् भयसे मुक्त कर देता है, किंतु सकामभावसे किये हुए शास्त्रविहित बहुत-से कर्म भी जन्म-मरणरूप महान् भयसे मुक्त नहीं कर सकते।

प्र०—निष्काम कर्मयोगका स्वरूप विस्तारपूर्वक बतलाइये ?

उ०—शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंमें फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार समत्वबुद्धिसे केवल भगवत्-अर्थ या भगवत्-अर्पण कर्म करनेका नाम निष्काम कर्मयोग है। इसीको समत्वयोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म, मत्कर्म आदि नामोंसे कहा है।

प्र०—कर्मोंमें फलके त्यागका क्या स्वरूप है ?

उ०—स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग आदि सांसारिक सुखदायक सम्पूर्ण पदार्थोंकी इच्छा या कामनाका सर्वथा त्याग ही कर्मोंके फलका त्याग है।

प्र०—आसक्तिका त्याग किसे कहते हैं ?

उ०—मन और इन्द्रियोंके अनुकूल सांसारिक सुखदायक पदार्थों और कर्मोंमें चित्तको आकर्षण करनेवाली जो स्नेहरूपा वृत्ति है, 'राग', 'रस', 'सङ्ग' आदि जिसके नाम हैं, उसके सर्वथा त्यागका नाम आसक्तिका त्याग है।

प्र०—भगवत्-आज्ञासे यहाँ क्या अभिप्राय है ?

उ०—श्रुति, स्मृति, गीतादि सत्-शास्त्र तथा महापुरुषोंकी आज्ञा भगवत्- आज्ञा है।

प्र०—समत्वबुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश, जीवन-मरण आदि इष्ट-अनिष्टकी प्राप्तिमें सदा-सर्वदा सम रहना समत्वबुद्धि है।

प्र०—भगवत्-अर्थ और भगवत्-अर्पण कर्ममें क्या भेद है ?

उ०—फलमें कोई भेद नहीं। फल तो सबका ही परम श्रेय है अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्ति है, साधनकी प्रणालीमें कुछ भेद है।

(क) भगवत्-अर्थ कर्म

स्वयं भगवान्‌की पूजा-सेवारूप कर्मोंको या भगवत्-आज्ञानुसार शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको भगवत्-प्रेम, प्रसन्नता या प्राप्तिके लिये कर्तव्य समझकर केवल भगवान्‌के आज्ञापालनके लिये करना अर्थात् कर्म करनेके पूर्व ही इन सब उद्देश्योंको या इनमेंसे किसी भी उद्देश्यको रखकर कर्मोंका करना भगवत्-अर्थ कर्म है (गीता १२। १०)।

(ख) भगवत्-अर्पण कर्म

शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको तथा मन, वाणी, शरीरसहित अपने-आपको प्रभुकी वस्तु समझकर प्रभुके समर्पण कर देना अर्थात् कर्मोंके करनेमें अपने-आपको सर्वथा भगवान्‌के परतन्त्र समझकर कठपुतलीकी भाँति स्वामीके हाथमें सौंप देना। कठपुतलियोंका तो जड होनेके कारण स्वयं नटके अधीन होकर रहना नहीं है, नट ही उन्हें अपने अधीन रखता है, किंतु इसका तो स्वयं स्वामीके अधीन होकर रहना है, इसलिये इसमें यह और विशेषता है। इसके सिवा पद-पदपर स्वामीके स्वरूप और दयाका दर्शन करते हुए क्षण-क्षणमें मुग्ध होते रहना और सर्वस्व स्वामीका ही समझते हुए अभिमानसे रहित रहकर निमित्तमात्र बनकर प्रभुके आज्ञानुसार कर्मोंका करना सर्वोत्तम भगवत्-अर्पण कर्म है (गीता ९। २७-२८)।

प्र०—क्या निष्काम कर्मयोगका यह साधन कष्टसाध्य है ?

उ०—वास्तवमें कष्टसाध्य नहीं है। हाँ, जो कष्टसाध्य मानते हैं उनके लिये कष्टसाध्य है और जो सुखसाध्य मानते हैं उनके लिये सुखसाध्य है।

प्र०—यदि ऐसा है तो साधकको सुखसाध्य ही मानना चाहिये, किंतु जो कञ्चन, कामिनी, कुटुम्ब और शरीरके आरामको छोड़कर साधन करते हैं उन्हें भी यह कष्टसाध्य क्यों प्रतीत होता है ?

उ०—मनकी चञ्चलता तथा मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदिकी इच्छा एवं राग, द्वेष, ममता, अहंकार और अज्ञान आदि दोषोंके कारण तथा श्रद्धा और प्रेमकी कमी एवं इसके रहस्य और प्रभावको न जाननेके कारण यह कष्टसाध्य प्रतीत हो सकता है।

प्र०—इस साधनमें रुकावट डालनेवाले दोषोंमें भी विशेष दोष कौन-कौन-से हैं ?

उ०—श्रद्धा और प्रेमकी कमी, मान और बड़ाईकी इच्छा, मनकी चञ्चलता, प्रमाद, आलस्य, अज्ञान, आसक्ति और अहंकार-प्रभृति विशेष दोष हैं।

प्र०—इन सबके नाशके लिये साधकको क्या करना चाहिये ?

उ०—विवेक और वैराग्यद्वारा सारे विषय-भोगोंसे मनको हटाकर भगवान्‌की शरण रहते हुए श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्काम कर्मयोगके साधनके लिये प्राणपर्यन्त

चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार चेष्टा करनेसे सम्पूर्ण दुःख और दोषोंका नाश होकर परम आनन्द और परम शान्तिकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

प्र०—'प्राणपर्यन्त चेष्टा करना' किसे कहते हैं ?

उ०—कञ्चन, कामिनी, भोग और आरामकी तो बात ही क्या, निष्काम कर्मयोगरूप धर्मके थोड़े-से भी पालनके मुकाबलेमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझने एवं परम तत्पर होकर उसके पालनके लिये सदा-सर्वदा प्रयत्न करनेको प्राणपर्यन्त चेष्टा करना कहते हैं।

प्र०—इस प्रकारकी चेष्टा तत्परतासे न होनेमें क्या कारण है ?

उ०—इसके प्रभाव और रहस्यको तत्त्वसे न समझना।

प्र०—प्रभाव और रहस्यको तत्त्वसे जाननेके लिये क्या करना चाहिये ?

उ०—इसके प्रभाव और रहस्यको बतलानेवाले गीतादि शास्त्रोंका मनन एवं इसके तत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंका सङ्ग करके उनके बतलाये हुए मार्गके अनुसार कटिबद्ध होकर चेष्टा करनेसे इसके प्रभाव और रहस्यको मनुष्य तत्त्वसे जान सकता है। जो इस निष्काम कर्मयोगके रहस्य और प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है वह फिर इसे छोड़ नहीं सकता तथा साधन करते-करते अहंता, ममता और आसक्ति आदि सारे दोषोंसे मुक्त हो जाता है और उसका सारे संसारमें भी सदा-सर्वदा समभाव हो जाता है। इस प्रकार जिसकी समतामें निश्चल-स्थिर स्थिति है उसकी परमात्मामें ही स्थिति है; क्योंकि परमात्मा सम हैं, इसलिये वह सारे दुःख, पाप और क्लेशोंसे छूटकर परम आनन्द और परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति जिसकी अन्तकालमें भी हो जाती है वह भी जन्म-मृत्युके महान् भयसे छूटकर विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है (गीता २।७२)।

एक क्षणके लिये

('श्रीसुदर्शन'जी)

शान्ति और प्रकाशकी एक किरण—प्रकट होती है जीवनके उस भीषण तमसाच्छन्न व्योममण्डलमें, जब मनुष्य अपने सम्पूर्ण उद्योग एवं बलकी इतिश्री समझकर निराश हो जाता है।

अन्धकार—केवल अन्धकार। मार्गका पता नहीं। भटकनेकी चरणोंमें शक्ति नहीं। अंगुलियाँ ठोकरोंसे फूटकर रक्तसे लथपथ हो रही हैं। पदतल कण्टकोंका पञ्जर बना हुआ है।

आह ! बैठा भी तो नहीं जाता। ये विषैले दन्दशूक बैठने भी दें तब तो। तनिक हिले—ऊफ! अनेक कण्टक शरीरमें चुभ गये।

प्रभो ! करुणासिन्धो! आर्तिविनाशन! दयामय ! ....

बस—यही होती है सच्ची पुकार। इसी समय हृदय वास्तवमें उसे पुकारनेकी योग्यता प्राप्त करता है निश्छल, निष्कपट, सत्यताके साथ।

इसे जीवनका सर्वोत्तम स्वर्णिम क्षण कहेंगे।

प्रकाशकी वह अनादि नित्य किरण सिंचित कर देती है अणु-अणुमें अपूर्व मादकता, भर देती है अनोखी शान्ति।

आनन्द—केवल आनन्द-शान्ति-अविचल शान्ति।

कहते हैं यह दुःखद है, भयंकर है और जानें क्या-क्या है। पर मेरे लिये ? मधुर है, सुखद है, सुन्दर है।

दोगे जनार्दन! वह— हाँ वही घोर अन्धकारमय पर प्रकाशका पूर्ववर्ती क्षण— एक क्षणके लिये ? इसी जीवनमें। आ जायगा फिर तो स्वतः ही वह मङ्गल मधुर शाश्वत प्रकाश।.......................।

ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल

(स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)

[गताङ्क पृष्ठ ६२३ से आगे]

१६—आजीवन ब्रह्मचारीके लिये सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठाका निर्णय-निश्चय कर ले। उसे चार निष्ठाओंमेंसे अपने लिये कोई एक चुन लेना चाहिये—

(१) कर्म—यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षानिवारण, रोग-निवारण, स्वच्छताका प्रचार, लोगोंमें नैतिक जीवनकी ओर रुचि उत्पन्न करना। (२) उपासना—गायत्रीजप, नामजप, देवाराधन, संकीर्तन, कथाश्रवण, भक्तिके विभिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान। (३) योग—आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा चित्तवृत्तियोंके निरोधका अभ्यास। (४) ज्ञान—श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्म-साक्षात्कारके लिये प्रयत्न। इन चारोंमेंसे किसी एकको प्रधान और शेषको गौणरूपसे धारण करना चाहिये। सभी निष्ठाओंमें इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहारकी अपेक्षा है। किसी एक निष्ठाको स्वीकार किये बिना अकर्मण्यता—बेकारी आनेका डर रहता है, जिससे मनमें विकारोंके आ जानेकी सम्भावना रहती है। निकम्मे आदमीका जीवन प्रमादका घर होता है।

१७—ब्रह्मचारीको कामविजयके साथ-ही-साथ अत्यन्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्य दोषोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। काम बड़ा मायावी है। वह तरह-तरहके रूप धारण करके आक्रमण करता है, जैसे—(क) मोह-ममता—यह मेरा प्रिय व्यक्ति अथवा प्रिय वस्तु है, पहले इस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर पीछे भोगबुद्धि उत्पन्न करा देता है। (ख) लोभ—पहले साधनाकी सुविधा और आवश्यक सामग्रीके छलसे द्रव्य इकट्ठा करा लेता है और पीछे वासनापूर्तिके लिये उसका उपयोग करता है। (ग) क्रोध—पहले अपने आलोचक अथवा निन्दकको अपने मार्गसे हटा देता है और फिर इच्छा-पूर्तिकी छूट दे देता है। (घ) मान—प्रतिष्ठा—पहले लोगोंके चित्तपर अपनी धाक जमाकर फिर मनमानी कराता है। (ङ) मिथ्या अभिमान—अब मेरा चित्त निर्विकार हो चुका है, मैं योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, सिद्ध हूँ—इस प्रकारकी अन्धता उत्पन्न करके फिर भोगके गढ़ेमें डाल देता है, आदि।

कामके इन मायावी रूपोंसे बचनेके लिये सतत सावधानीकी आवश्यकता है। इसके लिये इन उपायोंपर चलना चाहिये—(१) किसीसे विशेष हेल-मेल न बढ़ाना, सम्बन्धी एवं परिचितोंके देशमें न रहना और न आना-जाना। (२) पैसे एवं वस्तुओंका संग्रह न करना। (३) आलोचकों एवं निन्दकोंको अपना हितैषी समझना और उनकी आलोचनाका आत्मनिरीक्षणमें सदुपयोग करना। कभी-कभी निन्दकोंके द्वारा अपने ऐसे छिपे दोषोंका पता चल जाता है, जिनका ज्ञान स्वयं साधकको भी नहीं रहता। (४) अपने ऊपर लोगोंकी विशेष श्रद्धा कभी न करावे। मान-प्रतिष्ठाका अत्यन्त निषेध भी न करे; क्योंकि वह निषेधसे ही बढ़ती है। जहाँतक हो सके स्वयं उससे बचना चाहिये। (५) किसी प्रकारका अभिमान धारण न करे। अभिमान ही कामका आश्रय है। अभिमानके सहारे ही वह फूलता-फलता है। परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मामें द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, फिर कौन किसका अभिमान करे?

१८—प्राकृत पदार्थोंके सेवनसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है, विकृत पदार्थोंके सेवनसे नहीं; जैसे पीली एवं सोंधी, ठंडी मिट्टीका शरीरमें लेप करनेसे और गन्ध सूँघनेसे जितना लाभ होता है, उसका शतांश भी तेल-फुलेल-इत्र आदिसे नहीं होता। पेडूपर ठंडी मिट्टीकी पट्टी बाँधनेसे स्वप्नदोष नहीं होता। गङ्गा आदि नदी, समुद्र एवं वर्षाका जल भी पान-स्नानके द्वारा ब्रह्मचर्यके लिये हितकारी है, सोडावाटर, नल आदिका नहीं। अग्नि एवं सूर्यका सेवन—उपस्थान-नमस्कार आदि वीर्यको पचाता है। हवन और सूर्योपस्थानका यह भी एक प्रयोजन है। बिजलीकी रोशनीसे

ब्रह्मचर्यमें कोई सहायता नहीं मिलती। खुली हवा एवं अनाहत नाद जितने उपयोगी हैं, उनके सामने पंखेकी हवा और आहत शब्दकी कोई गिनती ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारीको कृत्रिम पदार्थोंसे दूर ही रहना चाहिये। फल, शाक, दूध, कच्चे और अङ्कुरित अन्न ब्रह्मचर्य-रक्षामें बड़े सहायक हैं। घी, दही लाभकारी नहीं हैं। घीसे मेदोवृद्धि, अपच और पाचनयन्त्रोंपर भारका आधिक्य होता है। दहीकी अम्लता धातुको क्षीण करती है। जहाँतक हो सके, स्वाभाविक स्वच्छ और अन्तर्मुख करनेवाले प्रदेशमें रहना चाहिये और वैसी ही वस्तुओंका सेवन भी करना चाहिये।

१९—रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसना जो रस ग्रहण करती है, वही शुद्ध और पक्व होकर वीर्यके रूपमें परिणत होता है। यदि रसपर काबू नहीं है तो वीर्यपर भी नहीं रह सकता। कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियका ही पूरक औजार है। रसना यदि रस ग्रहण करेगी तो ठीक पाचन न होनेपर उसका क्षरण अनिवार्य है। इसलिये रसनाकी रसासक्तिपर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये—

(१) भोजनमें स्वादपर दृष्टि नहीं रखना। केवल जीनेभरके लिये हितकारी वस्तुओंसे उदरपूर्तिमात्र कर लेना। शौकसे खट्टी, मीठी, चरपरी वस्तु नहीं खानी चाहिये। न स्वादके लिये ही खानी चाहिये। (२) स्वयंपाकी हो तब तो नमक, मीठे, खट्टे, मसालेका प्रयोग ही नहीं करना चाहिये। शुद्ध सात्त्विक एवं परिमित अल्प भोजन समयपर ही करना चाहिये। अनेक बार भोजन नहीं करना चाहिये। (३) यदि किसी समुदाय या आश्रममें रहना हो तो जो कुछ वहाँ स्वाभाविक एवं अविरुद्ध भोजन बनता हो वही खाना चाहिये। अपनी व्यक्तिगत इच्छा प्रकट नहीं करनी चाहिये। अलगसे माँगकर, खरीदकर जिह्वातृप्ति नहीं करनी चाहिये। (४) यदि भिक्षा करते हों तो जो विरुद्ध वस्तु भिक्षामें आवे उसे त्याग दें; परंतु अनुकूल वस्तु माँगें नहीं। बड़ोंकी अधीनता, श्रद्धा, सेवा, श्रम और व्यर्थ समय न खोना—ये ऐसे उपाय हैं जिनसे हम क्या खायँगे, इसपर ध्यान ही नहीं जाता। (५) आवश्यक भोजन एक बार ही परोसवा लें, बार-बार न लें। ठंडे-गरमका विचार न करें। दूसरा क्या खा रहा है—यह देखे बिना मौन होकर भोजन करें। सम्भव हो तो वस्तुओंकी और ग्रासोंकी गिनती निश्चित कर लें। (६) भोजनके प्रारम्भमें भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। इससे स्वतः प्राप्त स्वादिष्ट भोजनके प्रति स्वादवासनाका दोष मिट जाता है। (७) भोजनके पहले पाँच ग्रास प्राणोंको आहुतिके रूपमें देने चाहिये, **'प्राणाय स्वाहा'**, **'अपानाय स्वाहा'** आदि। इससे 'मैं भोक्ता हूँ अथवा स्वाद ले रहा हूँ', यह भ्रान्ति मिट जाती है। (८) 'मैं नहीं खा रहा हूँ, मेरे नाभिचक्रमें वैश्वानर अग्निके रूपमें बैठे हुए स्वयं भगवान् ही भोजन कर रहे हैं'—इस भावसे भोजन करनेपर स्वादकी वृत्ति चली जाती है।

स्वयंपाकी ब्रह्मचारीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने लिये ही भोजन न बनाये। अन्य किसीको खिला करके ही खाय—**'केवलाघी भवति यः केवलादी।**

२०—किसी व्यक्तिका सौन्दर्य अथवा उसके द्वारा निर्मित वस्तुका सौन्दर्य देखनेकी वासना अन्ततोगत्वा भोगमें परिणत हो जाती है। इस नेत्रवासनाने बड़े-बड़ोंको विकारके अग्निकुण्डमें झोंक दिया है। नेत्रवासनाने केवल पतिंगेको ही भस्म नहीं किया, बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों और सदाचारियोंको भी पतनके गर्तमें ढकेलकर सर्वनाशतक पहुँचा दिया। बिल्वमङ्गलने आँखें फोड़कर इससे पिण्ड छुड़ाया। इसपर विजय प्राप्त करनेके लिये बहुत जागरूक रहना चाहिये—

(१) मन-ही-मन चामका पर्दा हटाकर तब व्यक्तियोंको देखना चाहिये। (२) जगज्जननी जगदम्बाको ही सर्वत्र देखना चाहिये। परमहंस रामकृष्णके सम्बन्धियोंने उन्हें गृहस्थ-जीवनसे उदासीन देखकर एक वेश्याकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया। जब वेश्या अपने हाव-भाव-कटाक्षमें उन्हें आकृष्ट करनेका प्रयत्न करने लगी, तब परमहंसजी तीन बार 'मा! मा!! मा!!! कहकर समाधिस्थ हो गये। वे जगज्जननीके उपासक थे। (३) अपने इष्टदेवकी अनुपम रूप-माधुरीका प्रेमसे चिन्तन करना चाहिये। एक बार श्रीरामानुजाचार्यने श्रीरङ्गक्षेत्रमें वेश्याके रूप-सौन्दर्यपर

आसक्त व्यक्तिको देखा। वह वेश्याके सामने उसकी ओर मुँह करके छाता लगाये हुए था और पीछेकी ओर चलता था। आचार्यचरणने उसके ऊपर कृपा की और उसे अपने निवास-स्थानपर बुलाकर अपने आराध्यदेवके ऐसे अलौकिक सौन्दर्यका दर्शन करा दिया, जिसपर उसने अपना जीवन, अपना सर्वस्व ही न्यौछावर कर दिया और प्रभुके चरणोंका सेवक बन गया। (४) चलते समय चार हाथसे अधिक दूरतक न देखना। इधर-उधर न देखना। तिरछी और चुभती हुई दृष्टिसे किसीको न निहारना। दृष्टि पक्की करनेका अभ्यास करना। (५) रंगोंके उभार और आकृतियोंके आड़े-तिरछेपनमें कभी महत्त्वबुद्धि न करना। (६) अन्तःसौन्दर्यकी अनुभूति, ईश्वरीय सौन्दर्यका अनुसंधान और प्राकृत सौन्दर्यके निरीक्षणसे व्यक्तिगत सौन्दर्यका आकर्षण एवं प्रलोभन नहीं रह जाता। (७) सौन्दर्यका सच्चा स्वरूप निर्विकारता है, यह बात ध्यानमें रहनी चाहिये।

२१—वैसे तो सभी सांसारिक सुख स्पर्शजन्य ही हैं। कानकी झिल्लियोंसे जो स्पर्श होता है, उसे शब्द कहते हैं और आँखकी किरणें जिससे टकराती हैं, उसे रूप; परंतु इस प्रसंगमें स्पर्शका अभिप्राय त्वचा-इन्द्रियके कार्यसे है। दाद खुजलानेसे जैसा सुख होता है, कामसम्बन्धी सुख भी प्रायः वैसा ही है। स्पर्श भोगका अवश्यम्भावी पूर्वरूप है। इसलिये ब्रह्मचारीको स्पर्शसे बचना चाहिये। यह बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों एवं योगियोंको भी बेसुध करके बन्धन-स्थानपर पहुँचा देता है।

स्पर्शके सम्बन्धमें ये सावधानियाँ रखनी चाहिये—

(१) स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका स्पर्श कभी न करे। (२) लड़कियों और लड़कोंका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। एक बड़े अनुभवी, ईमानदार एवं सच्चे बालब्रह्मचारीने मुझे बताया कि वे थोड़ी आयुके बालक और बालिकाओंको अपनी गोदमें बैठाकर प्यारसे उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे। उनके मनमें अपनी निर्विकारताका अभिमान था। धीरे-धीरे भक्त शिष्योंकी बालक-बालिकाएँ वयस्क हुईं। स्पर्शकी क्रिया पूर्ववत् चलती रही। अब बुढ़ौतीमें उन युवतियोंके स्पर्शसे मनमें विकार आने लगा है। उन्होंने अब स्पर्श न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, यद्यपि पंद्रह वर्षपूर्व वे मना करनेवालोंकी खिल्ली उड़ाया करते थे। (३) कोमल शय्या, वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदि भक्तोंके आग्रहपर भी स्वीकार नहीं करने चाहिये। (४) साबुन, क्रीम आदिके द्वारा अपने शरीरको मुलायम नहीं बनाना चाहिये। (५) अपने ही शरीरके कपोल, गुह्याङ्ग आदिका बार-बार स्पर्श करना भी ब्रह्मचर्यका घातक है। (६) गायत्री-जप, शरीरके प्रत्येक अवयवमें न्यास, ध्यान, त्रिकालस्नान, हाथोंमें कुश-मुष्टि, दण्ड आदिके धारण, वल्कल-वसन, भस्मधारण आदिके द्वारा जनसाधारणसे अपनेमें एक प्रकारकी पृथक्ता एवं अपनी पवित्रता तथा दिव्यताकी भावना जाग्रत् कर लेनी चाहिये। इससे दूसरोंके एवं अपने गुह्याङ्गोंके स्पर्शसे रक्षा हो जाती है। (७) ईश्वर, गुरु एवं अन्तरात्माको साक्षी बनाकर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि ब्रह्मचर्यव्रतके विपरीत स्पर्श होनेपर मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा। मेरे पास एक एम्० ए०, डी० लिट्० महाशय आया करते थे। उनमें रूपवती युवतियोंकी ओर घूरने तथा चलते-फिरते उन्हें छू देनेका दोष था। उन्होंने मेरे सामने यह प्रतिज्ञा की कि बुरी नीयतसे स्पर्श होनेपर गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे दूँगा। थोड़े ही दिनोंमें उनकी घूरनेकी आदत भी छूट गयी। जिस रास्तेपर जाना ही नहीं है, उसके मीलके पत्थरोंकी गिनती मालूम करनेसे क्या लाभ है? (८) ऐसे ग्रन्थोंका अनुसंधान करना चाहिये, जिनमें अस्पर्श-व्रतकी महिमाका उल्लेख हो, जैसे वाल्मीकिकृत रामायणके सुन्दरकाण्डमें सतीशिरोमणि श्रीजानकीजीकी कथा है। उन्होंने अपने पुत्रवत् परम भक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमान्जीको भी स्पर्श करनेसे मना कर दिया था।

एक बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये। रूप, स्पर्श आदिकी वासनाएँ मनकी कमजोरी हैं। दृढ़ प्रतिज्ञा, निश्चय और सावधानीसे ही इनपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

२२—यद्यपि शास्त्रोंमें केवल जननेन्द्रियके संयमको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं, तथापि समस्त इन्द्रियोंका संयम हुए बिना ब्रह्मचर्यकी रक्षा सम्भव नहीं है। जब किसी इन्द्रियके द्वारसे मनको बाहर निकलनेका अवकाश नहीं

मिलता, तब उसमें एकाग्रता और निरोध-दशाका उदय होने लगता है। यह बड़े-बड़े खेल खेलता है। विक्षेपप्रिय होनेके कारण एकाग्रता इसे जेलके समान मालूम पड़ती है। निरोध तो मानो कालकोठरी ही हो। एक इन्द्रियका संयम करो तो यह दूसरी इन्द्रियसे भाग निकलनेकी चेष्टा करता है। वाणीको बंद करते ही यह हाथसे लिखनेकी कलासे मोहित कर लेता है। यदि ब्रह्मचारीने समस्त इन्द्रियोंके निग्रह और संयमका कौशल प्राप्त करनेमें कुछ निपुणता प्राप्त कर ली तो यह शरीरमें हनुमान्‌का-सा बल, भीष्मकी-सी इच्छामृत्यु, शाण्डिलीके समान गरुड़को गलानेकी शक्ति, सनकादिके समान नित्य शैशव आदि प्राप्त करानेकी लालसाका रूप धारण करके चमत्कारोंके चक्करमें डाल देता है अथवा प्रचारकी तीव्र वासनाको प्रोत्साहित करता है। परमार्थ-पथके पथिकोंको इनसे परहेज करना चाहिये। उन महापुरुषोंमें वे सिद्धियाँ स्वाभाविक थीं, उन्होंने ब्रह्मचर्यसे उन्हें खरीदा नहीं था। साधारण साधकका मन निरोधके भयसे ही उनकी इच्छा उपस्थित करता है।

२३—यदि चमत्कारोंके चक्कर और प्रचारकी वासनासे बचकर मन और इन्द्रियगोलकोंका सम्बन्ध रोक दिया गया, इन्द्रियाँ शान्त और स्थिर हो गयीं तो स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि विषय और इन्द्रियोंमें कोई भेद नहीं है। एक ही जड सत्ता दो रूप धारण किये हुए है। वही विषय है और वही इन्द्रिय है। विषयगत रूप और नेत्रगत रूपमें कोई भेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें मन स्वतन्त्र विषयोंकी सृष्टि करने लगता है। साधारणतः अनुभूयमान प्रपञ्चसे विलक्षण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दकी संवित् होने लगती है। अनेक प्रकारके दिव्य दृश्य, चित्र-विचित्र अनुभूतियाँ, देवता, दानव, स्वर्ग-ब्रह्मलोक आदिके दर्शन होने लगते हैं। यह सब मनके ही आकार-विशेष हैं। शास्त्र, सम्प्रदाय, मत, पन्थ, व्यक्तिगत जानकारी, मान्यता एवं भावनाएँ जो बुद्धिमें संस्काररूपसे निहित रहती हैं, उदय हो-होकर एक जाल-सा बिछा देती हैं और साधकको उन्हींमें नित्यबुद्धि, सत्यबुद्धि उत्पन्न कराकर फँसा देती हैं। इस अवस्थामें साधक ऐसा समझने लगता है कि अब मेरा प्रवेश दिव्य राज्यमें हो गया है और मैं भागवत-सत्ता एवं भगवल्लीलाका अनुभव कर रहा हूँ। यह भी भ्रम है। जहाँतक नाम और आकृतियोंका भेद है, वहाँतक वास्तविक सत्ताका अनुभव नहीं है। इसका भी निरोध आवश्यक है। तत्पश्चात् एक अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है, इस आनन्दका भोग भी ब्रह्मचर्यका विघ्न ही है। जब आनन्दकी वृत्ति भी शान्त हो जाती है तब अस्मितामात्र शेष रह जाती है। इस अवस्थामें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अस्मितासे लेकर विषयपर्यन्त एक ही प्रकृतिका, जड सत्ताका विलास है। मैं तो केवल द्रष्टामात्र हूँ। मैं अकर्ता, अभोक्ता अर्थात् नित्य ब्रह्मचारी हूँ।

२४—यह अनुभूति भी वास्तविक नहीं है। इसमें भी संस्कारशेष विद्यमान रहते हैं। विषयगत भेदके संस्कार, ईश्वरके सम्बन्धमें अन्यत्वकी कल्पना और द्रष्टाके अनेक होनेकी भ्रान्ति इस अवस्थामें भी विद्यमान होते हैं। कोई भी अभ्यासजन्य समाधि, चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रख लिया जाय, अज्ञानकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहीं है। उसकी निवृत्ति तो **'तत्त्वमसि'** आदि महावाक्यजन्य वृत्तिज्ञानसे ही होती है। समाधिके द्वारा अन्तःकरणके समस्त संस्कार अथवा अशुद्धियोंके धुल जानेपर स्वतःसिद्ध निरुपद्रव पूर्णबोधात्मक अखण्ड चिति ही शेष रह जाती है और वही आत्माका, ईश्वरका तथा जगत्‌का भी सच्चा स्वरूप है। ब्रह्मचर्यका भी वास्तविक स्वरूप वही है। इस पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति समस्त साधन और वेद-शास्त्र आदिका लक्ष्य है। इसीका अनुभव, साक्षात्कार अथवा बोधात्मक उपलब्धि होनेसे मनुष्य-जीवन, जीव-जीवन सफल-चरितार्थ होता है।

२५—पूर्ण ब्रह्मचर्यमें बाधात्मक स्थिति होनेपर ये शुभ सद्गुण जीवनमें स्वाभाविक ही रहने लगते हैं—व्यवहारशुद्धि, अन्तःकरणकी निर्मलता और सहज स्थिति। साधन-कालमें इनके लिये प्रयास करना पड़ता है और सिद्धिकालमें बिना प्रयत्नके स्वतः सिद्ध होते हैं—

(१) व्यवहारशुद्धि—संयम, सरलता, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार आदि सद्गुण स्वाभाविक ही जीवनमें

उतर आते हैं। बाह्य वस्तुओंमें सुखबुद्धि न रहनेके कारण अन्यायके संग्रह-परिग्रहका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भोगलिप्सासे उत्पन्न होनेवाली हिंसा स्वतः निवृत्त हो जाती है। किसी वस्तुके नाशका भय नहीं रहता। छोटे-से-छोटे कार्यमें भी दैवी सम्पत्तिके महान् गुणोंका प्राकट्य होने लगता है। जाति, पन्थ और भाषाका दुराग्रह मिट जाता है। वह समाज, जाति, राष्ट्र, मानवता, विश्व एवं विश्वात्माका सच्चा सेवक होता है। उसके शरीरके कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्वहित, भगवत्प्रेम और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनकी ऐसी रश्मियाँ एवं धाराएँ बिखरती रहती हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रेमसे परिलुप्त हो जाय।

(२) अन्तःकरणकी निर्मलता—अन्तःकरणके अच्युततत्त्वमें स्थित हो जानेसे विषयसम्बन्धी सारे विकार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। निर्विकार अन्तःकरणकी जो अपने सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन-आश्रयसे अभिन्न स्थिति है, वही शुद्धि है; क्योंकि उसमें वृत्ति और विषयका मिश्रण नहीं है। मिश्रण ही अशुद्धि है। चित्तमें जितने भी दोष, दुर्गुण, अशुद्धि, विकार होते हैं, उनमें कोई-न-कोई विषय वृत्तिके गर्भमें विद्यमान रहता है, यथा—काममें कामिनी, क्रोधमें शत्रु, लोभमें धन आदि, परंतु सत्य, अहिंसा, निष्कामता, निर्लोभता आदि सद्गुणोंमें अन्तःकरण सर्वथा निर्मल एवं निर्विषय रहता है। उस समय वृत्ति अपने शान्त आश्रयसे भिन्न करके अपनेको नहीं दिखाती। सत्य, अहिंसा, निष्कामता आदि किसीके प्रति यह प्रश्न ही नहीं उठता। वृत्तिकी सत्तामात्र स्थिति ही सद्गुण है। इसपर यह प्रश्न होता है कि ऐसी अवस्थामें सद्गुण अनेक क्यों? इसका उत्तर यह है कि एक ही शान्त स्थितिरूप सद्गुणको हिंसा, लोभ, काम आदि भिन्न-भिन्न दुर्गुणोंकी निवृत्ति करनेके कारण विभिन्न नामोंसे व्यवहार करते हैं। दुर्गुण अनेक हैं, इसीसे उनकी व्यावर्तक वृत्तिमें भी अनेकताका व्यवहार होता है। जैसे कामका विषय कामिनी है, वैसे ब्रह्मचर्यका कुछ विषय नहीं है। यह तो चित्तकी शान्ति ही है। काम केवल जाग्रत् एवं स्वप्नमें रह सकता है और समाधिमें नहीं। ब्रह्मचर्य जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि आदि सभी अवस्थाओंमें एकरस रहता है, इसलिये यह अखण्ड सत्य है। अतएव अखण्ड ब्रह्मचर्यमें स्थिति ही अन्तःकरणकी सच्ची शुद्धि है।

(३) सहज स्थिति—समाधि हो चाहे कोई विशेष अवस्था, ब्रह्मचारीकी सहज स्थिति भंग नहीं होती। उसके लिये प्रवृत्ति और निवृत्ति सम हैं। उसके अपने स्वरूपसे भिन्न द्रष्टा, दर्शन, दृश्य कुछ भी नहीं है। वह सहज भावसे रहता है। अपने जीवनमें किसी प्रकारकी विशेषताका आरोप नहीं करता। उसका व्यवहार सम है, वृत्ति सम है, स्वरूप सम है और विषमता भी सम है। वह जीवन्मुक्त है, उसकी स्थिति सहज है।—(समाप्त)

तीर्थसेवनका फल किसे मिलता है

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥

(पद्म०, सृष्टि० १९।८-१०)

'जिसके हाथ, पैर और मन संयममें रहते हैं तथा जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् होता है, वही तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त करता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है—किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीसे संतुष्ट रहता है तथा जिसका अहंकार दूर हो गया है, ऐसे मनुष्यको ही तीर्थ-सेवनका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र! जो स्वभावतः क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, उसे तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त होता है।'

वेणुगीत

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌के सम्पर्कसे रहित वस्तुका सङ्ग ही कुसङ्ग है। जो भगवान्‌का स्मरण करा दे वह दुःख भी सुख है। गोपियाँ कहने लगीं—'भगवान्‌के सङ्गको प्राप्त करनेवाली मुरली, भगवान्‌के चरणस्पर्शको प्राप्त करनेवाली यह वनभूमि, भगवान्‌के वेणु-निनादके गानपर तालसे नाचनेवाले ये मयूर तथा इन सबकी शोभाको देखकर निस्तब्ध और निस्पन्द होनेवाले पशु-पक्षी भी धन्य हैं। इनका स्मरण करनेके कारण हम भी धन्य हैं।

इसके पश्चात् गोपियोंने देखा कि वंशीकी ध्वनिको सुनकर हरिणियोंकी टोलियाँ हरिणोंको साथ लिये वहाँ आ रही हैं, दल-के-दल आ रही हैं। हरिणियाँ चारों ओर श्रीश्यामसुन्दरको घेरकर एकटक नेत्रोंसे देखने लगीं।

गोपियोंने कहा—

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(श्रीमद्भा० १०। २१। ११)

विवेकरहित, मूढ-मूर्खा हरिणियाँ भी धन्य हैं; क्योंकि वे वेणु-नाद सुनते ही श्रीकृष्णके पास कृष्णसार मृगोंके साथ आ गयीं और वन-विहारके वेषमें सुसज्जित नन्दनन्दनकी ओर सतृष्ण प्रेम-दृष्टिसे अत्यन्त आदरपूर्वक देखने लगीं। जिनकी आँखें आन्तरिक आदर और प्रेमके साथ भगवान्‌की ओर लगें, वे चाहे पशु हों, मूढ हों अथवा वनवासी हों—आदरणीय हैं। हरिणियाँ श्रीकृष्णके सामने आ गयीं और कान लगाकर खड़ी हो गयीं। वे नेत्रोंसे उनके माधुर्य-रसका पान करने लग गयीं और कानोंसे मुरलीके द्वारा गान तथा संगीतरूपी भगवान्‌के अधर-रसका पान करने लगीं।

व्रजरमणियोंने हरिणियोंके सौभाग्यको सराहते हुए कहा—'जिस वनभूमिमें श्यामसुन्दर विचरण करते हैं, उनके चरणस्पर्शसे पवित्र बनी हुई भूमिमें रहनेका इन्हें सौभाग्य प्राप्त है, ये व्रजकी वृन्दावन-भूमिकी हरिणियाँ हैं। कोई राजमहलमें रहे, चाहे भोगोंमें सना रहे, उसका महत्त्व ही क्या है? भगवान्‌की चरणरजका स्पर्श तो उसे प्राप्त हुआ नहीं। ये हरिणियाँ धन्य हैं, सौभाग्यशालिनी हैं, जो उस वनभूमिमें निवास करती हैं, कूदती-फाँदती हैं, जिस भूमिका अङ्क या हृदय भगवान्‌के चरण-स्पर्शसे पवित्र होता रहता है।

गायोंके चरानेके मिषसे श्यामसुन्दर निरन्तर नित्यप्रति इनके वास-स्थानपर जाते हैं। भगवान् जिसके घरपर पहुँच जायँ, बिना बुलाये पहुँच जायँ और जंगलमें पहुँच जायँ, उसके सौभाग्यका क्या ठिकाना? ये वन-देवियाँ हरिणियाँ जंगलोंमें रहती हैं, ये वनमें श्यामसुन्दरको निमन्त्रण देकर बुलातीं नहीं और इनके घरपर ऐसी कोई साज-सामग्री भी नहीं, जिससे वे इन्हें पूजकर संतुष्ट कर सकें, इनका पूजन-सम्मान कर सकें। इनके योग्य कोई वस्तु दे सकें ऐसी भी नहीं हैं। न जाने किस जन्ममें इन्होंने कितना तप-पुण्य अथवा भगवान्‌की आराधना की है, जिसके फलस्वरूप प्रतिदिन श्यामसुन्दर इनके निवासस्थानपर वन-भूमिमें जाते हैं और जाकर इन्हें सुख देते हैं।

वे कहती हैं—'ये मूढ़ पशु-जाति होनेसे स्वभावतः इनमें कोई विवेक नहीं है, पर आश्चर्य है एवं इनके सौभाग्यका बड़ा भारी निदर्शन है कि ये विवेकहीन होनेपर भी श्रीकृष्णके दर्शनसे वञ्चित नहीं हैं। दुःख तो यह है कि हमलोग मनुष्य-कुलमें जन्मीं, मनुष्यत्वके अनुरूप विवेक लिये हुए जन्मीं, पर आज हम श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शनसे वञ्चित हैं, घरोंमें बैठी हैं।

जिसकी बुद्धिकी सारे जगत्‌में धाक है, सारा विश्व नत-सिर होकर जिसका सम्मान करता है, सब प्रकारके जिसमें गुण हैं, विद्या है, बुद्धि है, विवेक है, सब कुछ है, जो सर्वमान्य भी है, ऐसा विवेकशाली पुरुष भी यदि श्रीकृष्णके सम्बन्धसे रहित है और दूसरा एक विवेकहीन

है, पशु-जातीय है, सम्मान नहीं, सबके द्वारा उपेक्षित है, घृणित है, ऐसा भी यदि कोई जीव श्रीकृष्णके सम्पर्कसे संयुक्त है तो वह उस विवेकी पुरुषकी अपेक्षा करोड़ों गुणा श्रेष्ठ है; क्योंकि उसने भगवान्के सम्पर्कको पाया और इसने भगवान्से हटानेवाली वस्तुओंसे सम्पर्क रखा। दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है।

गोपियाँ कहने लगीं कि जब हमारे व्रजनन्दन वनविहारोपयोगी विचित्र नटवर-वेषसे सुसज्जित होकर वनमें प्रवेश करते हैं तथा वनकी शोभासे अत्यन्त आह्लादित होकर प्रसन्नचित्त तथा प्रमुदित होकर मोहन-मुरली बजाते हैं, तब ये गायें एवं हरिणियाँ उनके उस वेणु-नादको श्रवण करके तृण चरना भूल जाती हैं। जिन हरिणियोंके पास उनके छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे भी उन सबका पालन आदि कार्य भी भूलकर उन्हें छोड़ देती हैं। ये हठात् खिंची हुई-सी सब कुछ परित्याग करके बड़ी उतावली चालसे—द्रुतवेगसे श्रीनन्दनन्दनके उन भुवनमोहन रूप-माधुर्यको देखनेके लिये आकृष्ट हो जाती हैं। उस मधुर-रसका आस्वादन और मोहन-मुरली-नादका निकटसे श्रवण करनेके लिये ये दौड़ जाती हैं तथा वहाँ जाकर अपने नेत्रोंको उनके रूप-सौन्दर्यमें गड़ा देती हैं। उस समय हरिणियोंकी आँखोंकी पलकें पड़नी बंद हो जाती हैं। वे निर्निमेष-नेत्रोंसे व्रजेन्द्रनन्दनके भुवनमोहन रूपमाधुर्यका दर्शन और मुरलीका श्रवण करके कृतार्थ होती हैं। वास्तवमें यह सौभाग्य उन्हींको मिलता है, जिन्होंने जन्म-जन्ममें भगवान्की उपासना की, भगवत्प्रेमियोंका सङ्ग किया, चाहे वे पशु भले ही हों, ये हरिणियाँ पूर्वजन्मार्जित पुण्यशालिनी हैं। उनके घरवाले भी तो **'सहकृष्णसाराः'** कृष्णसार मृग हैं, जिन्हें वे साथ लेकर आयी हैं।

श्रीगोपाङ्गनाओंका एक विचित्र संकेत है कि 'हमारे घरवाले ऐसे नहीं हैं। जिसके घरवाले, सम्बन्धी तथा आत्मीय ऐसे मिल जायँ जो भगवान्की ओर लगानेमें सहायक हों और बाधा तो दें ही नहीं, सहायता दें एवं सङ्ग चलनेको तैयार हों, यह बड़ा सौभाग्य है। घरमें कोई भी यदि भगवान्की ओर लगनेवाला एक भी हो जाय तो वह अपने सारे कुलको तार देता है, विपरीत कुलको भी। एक प्रह्लादने अपने अत्याचारी पिताकी सद्गति की ही, साथ ही अपनी इक्कीस पीढ़ीको तार दिया। घरमें कुलमें एक भी भगवद्भक्त होनेपर सारे कुलके लिये आशाकी वस्तु बन जाता है। वास्तवमें सच्चे सुहृद् वे ही हैं जो भगवान्में लगा दें। अन्यथा वे सुहृद् मित्रके रूपमें वैरी हैं।

हरिणियोंके पति थे कृष्णसार मृग। यह नाम बड़ा ही सुन्दर है। वृन्दावनके ये हरिण संसारमें श्रीकृष्णको ही सार मानते थे और सारे संसारको निस्सार। वास्तवमें जो लोग—जो प्राणी इस प्रकारकी धारणा कर लें कि संसारमें श्रीकृष्ण ही सार हैं और सब निस्सार हैं, वे ही कृष्णसार हैं। हरिण भी कृष्णसार थे। अतः इन हरिणोंको साथ लेकर ये हरिणियाँ वहाँपर जा पहुँचीं। जब वृन्दावनके कृष्णसार हरिणोंने देखा कि उनकी पत्नियाँ कृष्णानुरागिणी हैं, श्रीकृष्णमें प्रेम करती हैं तो वे आनन्दके मारे अपने-आपको भूल गये। अपने घरमें भोगके स्थानपर भगवान्से प्रेम करनेवाली देवियोंको पाकर वे उनपर मुग्ध हो गये। हरिणियाँ जब श्रीकृष्णके दर्शनार्थ चलीं, तब इन्होंने भी उनका अनुगमन किया। वे भी साथ-साथ चल दिये।

सच तो यह है कि श्रीकृष्णसे प्रीति-लाभ करना ही मानव-जीवनकी सार्थकता है। जिन्हें श्रीकृष्णमें प्रीति रखनेवाले सम्बन्धी पति मिल जाते हैं, उन्हींके जीवनकी सार्थकता है। जिनके पति कृष्ण-भक्त हैं, वे रमणियाँ, वे देवियाँ धन्य हैं। जिनके पुत्र श्रीकृष्ण-भक्त हैं, वे माताएँ धन्य हैं। जिनके मित्र श्रीकृष्ण-भक्त हैं, वे मित्र धन्य हैं। जिनके शिष्य श्रीकृष्ण-भक्त हैं, वे गुरु धन्य हैं। जिस देशमें श्रीकृष्णके भक्त हैं, वह देश धन्य है। जिस ग्रन्थके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्तिकी उपलब्धि होती हो, वह ग्रन्थ धन्य है। शेष तो सब-के-सब अधन्य हैं; क्योंकि ये नरकोंमें ले जाते हैं ***'अंजन कहा आँखि जेहि फूटै'***··· जैसे आँखको फोड़ देनेवाला सुरमा किसी कामका

नहीं, इसी प्रकार—*जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ॥*'

इसी प्रकार श्रीकृष्णके भक्त कृष्णसार मृग कृष्णानुरागिणी अपनी पत्नियोंको श्रीकृष्णकी ओर जाते देखकर आनन्दमें उत्फुल्ल हो गये। इन लोगोंका भी मन नाचने लगा। इन्होंने भी उन्हें उत्साहित किया, आगे-आगे वे दौड़ीं, पीछे-पीछे ये दौड़े, परंतु उन्हें पकड़नेके लिये नहीं, अपितु उत्सुकतापूर्वक और आगे बढ़ा देनेके लिये। उन्हें देखकर व्रजाङ्गनाएँ कहती हैं कि मनुष्य न होकर यदि हम व्रजमें ऐसी हरिणियाँ हो जातीं तो हम कृतार्थ हो जातीं।' इस प्रकार श्रीकृष्णानुरागवती श्रीव्रजाङ्गनाएँ हरिणियोंकी श्लाघा करती हुई श्रीकृष्णदर्शनार्थ एवं श्रीकृष्ण-सङ्गकी प्राप्तिके लिये व्याकुल होने लगीं। जो भी, जिस-किसी भावसे भी श्रीकृष्णका सङ्ग प्राप्त कर रहे हैं या करते हैं, बस, उन्हींको गोपियाँ भाग्यवान् मानती हैं। उनके भाग्यका वर्णन करनेके व्याजसे वे उनके सौभाग्यका मङ्गलमय व्याख्यान करनेके साथ-साथ यही प्रकट कर रही हैं कि उनके हृदयमें अत्यन्त प्रबलरूपसे श्रीकृष्ण-दर्शन-लालसा उत्पन्न हो गयी है और उसका किसी प्रकारसे वे दमन नहीं कर सकतीं। इसलिये उनका हृदय खोज-खोजकर उनके सामने भाव रखता है और वे उन भावोंमें मस्त होकर उनकी प्रशंसाके बहाने उनके सौभाग्यके व्याजसे अपनी मनोदशाका चिन्तन परस्पर कर रही हैं।

व्रजरमणियाँ बोलीं—

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥

(श्रीमद्भा० १०।२१।१२)

जिस समय यह मुरली बजी, भगवान्‌का वेणुनाद हुआ, उस समय सभीको अपने-अपने भावानुसार रसकी प्राप्ति हुई, यह भुवनमें व्याप्त हो गया। यह वेणु-रव त्रिभुवनमें फैल गया और फैलकर जहाँ-जहाँ जिस-जिस भावके लोग थे, उन्हें-उन्हें उसी प्रकारसे प्रेरणा दी। पहले वर्णन आया है कि ब्रह्माजीकी समाधि लग गयी, तपस्वियोंकी समाधि भंग हो गयी आदि। यह वेणुनाद स्वर्गलोक तथा दिव्यलोकोंमें जा पहुँचा।

भगवान्‌की लीलाका दर्शन देवताओंके लिये बड़ा दुर्लभ है। देवलोकमें भगवान् ऐश्वर्यमय-स्वरूपसे रहते हैं। देवलोकमें कभी माधुर्यका प्रकाश नहीं होता। इसलिये मधुर लीला देखनेके लिये देवता नित्य तरसा करते हैं। देवताओंको मधुर लीला नहीं दिखायी देती। ऐश्वर्यका स्वरूप तो वे रात-दिन देखते हैं, स्तवन भी करते हैं, परंतु जब-जब भगवान्‌के मधुर-मनोहर अवतार होते हैं, उनका प्राकट्य होता है, उस समय बहुतसे देवता भगवान्‌की आज्ञाका सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। उनसे भगवान् ही कह देते हैं कि 'तुमलोग तथा देवाङ्गनाएँ हमारी लीला-भूमिमें सब लीला-परिकरके रूपमें प्रकट होकर अपनी-अपनी भूमिका निभाओ।' जिन्हें यह सौभाग्य नहीं मिलता, वे भी वेष बदल-बदलकर, रूप बदल-बदलकर वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ-कहीं लीलाका रसास्वाद मिलनेकी सम्भावना होती है। जब-जब प्रकट-लीला होती है एवं जहाँ परदा नहीं रहता, वहाँ आकाशपरसे दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये शेष देवताओंके विमान छा जाते हैं।

वेणु-ध्वनिके स्वर्गमें पहुँचनेपर सब देवता देवाङ्गनाओंकी आतुरता देखकर उन्हें साथ ले-लेकर विमानोंपर स्थित होकर नीचेकी ओर देखने लगे, यह बड़ा ही मधुर दर्शन था। श्रीगोपाङ्गनाएँ देखती हैं कि आकाशसे फूल बरस रहे हैं। ऊपरकी ओर देखनेपर उन्हें आकाशमें विमानोंके दल-के-दल दिखायी दिये। योगमायाकी कृपासे गोपाङ्गनाओंको वहाँका दृश्य दिखायी दिया। उन्होंने देखा कि वहाँ देवाङ्गनाएँ अपने-आपको भूलकर वेणु-रव श्रवण कर रही हैं और अत्यन्त विमुग्ध हो रही हैं। इसे देखकर ये वन्दन करती हुई कहने लगीं कि 'देखो! ये हरिणियाँ तो भूमिमें विचरण करती हैं तथा साथ रहती हैं, पर आकाशमें विचरण करनेवाली स्वर्गवासिनी देववधुएँ भी कितनी सौभाग्यवती हैं कि ये आज अपलक नेत्रोंसे—निर्निमेष श्रीकृष्णके सौन्दर्यका दर्शन कर रही हैं और प्राणभर उनका वंशीगान श्रवण कर रही हैं। उनके जन्मस्थान

वृन्दावनमें जन्म लेकर भी हम तो वनमें नहीं जा सकीं, अपने घरोंमें बैठी हैं तथा भगवान्से वञ्चित हैं। आकाशचारिणी देववधुएँ इतने ऊँचे स्वर्गमें रहकर भी उन्हें देख रही हैं, सुन रही हैं; क्योंकि उनके पास विमान है, उनके पति देवता उनके साथ हैं और उन्हें देखनेकी शक्ति मिली हुई है। सदासे व्रजमें निवास करनेवाली हमलोग आज इस परमसुखसे वञ्चित हो रही हैं। या तो नीचे कुलमें उत्पन्न हरिणियाँ और पशु-पक्षी भाग्यवान् हैं या उच्च कुलके देवता तथा देववधुएँ। हम तो न इधरकी रहीं न उधरकी, बीचमें रह गयीं। हमारी तो कोई गिनती ही नहीं है। हम यदि पशु होतीं तो भी अच्छा था। और कहीं देवता हो जातीं तब भी आज देखनेको तो मिलता।

श्रीगोपाङ्गनाओंको देवता या पशुसे मतलब नहीं है। ये सब बातें कहने-सुननेका, स्मरण करनेका तात्पर्य इतना ही है कि इसके द्वारा उनके अंदरकी श्रीकृष्णदर्शन और श्रीकृष्ण-सङ्गकी अदम्य लालसा बरबस प्रकट हो जाती है। अतः उनके सौभाग्यका वर्णन कर रही हैं। वर्णन करते-करते भगवान्का वह रूप फिर उनके सामने आ गया। (क्रमशः)

भोजनमें प्रसाद-बुद्धि

(एक महात्माका प्रसाद)

श्रद्धापूर्वक जीवन और जगत्का अध्ययन किया जाय तो यहाँ सब कुछ भगवान्का प्रसाद ही तो है—क्या यह जीवन और क्या यह जगत्, परंतु भोजनके सम्बन्धमें विशेष सावधानीकी अपेक्षा है। गहराईसे देखो, भोजन किस लियें किया जाता है? भूखका दुःख न हो तथा प्राण अर्थात् जीवनीशक्ति काम करती रहे, इसलिये भोजन किया जाता है। विवेकी पुरुष तो भोजन नहीं करता, प्रत्युत प्राण-भगवान्को आहुति देता है। आहुति ऐसी वस्तुओंकी दी जानी चाहिये जिससे जीवनीशक्ति दैवी स्वभावकी हो, अर्थात् आसुरी स्वभाव न आने पावे। भोजनका शारीरिक स्वभावसे अभेद सम्बन्ध है। भोजनकी सामग्री सत्त्वप्रधान हो। सत्त्वप्रधानका यह अर्थ नहीं है कि केवल फल, दूध आदि हो, अपितु रोटी, साग, दाल, भात आदि सादा आहार हो और अधिक कालका बना हुआ न हो, जो पचनेमें भी सुगम हो और प्राणोंको अधिक कालतक शक्ति भी दे सके। भोज्य पदार्थोंको प्राप्त करनेके लिये धन भी सात्त्विक अर्थात् न्यायपूर्वक उपार्जित हो और भोजन बनानेवाला भी सात्त्विक स्वभावका हो अर्थात् परिवार-सम्बन्धी हो। नौकरसे भोजन उन्हें बनवाना चाहिये जो अपने समान उसे भी खिला सकें, नहीं तो, अपने घरके लोगोंसे ही बनवाना चाहिये। जिससे भोजनमें मानसिक अपवित्रता न आने पाये। भोजन बनानेके लिये वही उचित होता है जिसका हृदय माताके समान विशाल हो।

आहुतिमें अभक्ष्य पदार्थ (अंडा-मांसादि) बिलकुल नहीं होना चाहिये। उन पदार्थोंका सेवन करनेसे प्राणोंमें शक्तिहीनता और स्वभावमें असुरता आती है। प्रत्येक ग्रास देते हुए हृदयमें यह भाव हो कि हम प्राण-भगवान्को आहुति दे रहे हैं। प्रधानतया पाँच प्रकारके प्राण हैं। यह भावना दृढ़ करनेके लिये भोजनके आरम्भकालमें आचमन करनेके पश्चात् प्रत्येक प्राणके नामसे—**'प्राणाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा'**—ऐसा बोलकर सात्त्विक पदार्थोंके पाँच ग्रासकी आहुति दें। ऐसा प्रतिदिन करनेसे 'मैं भोजन नहीं करता, प्रत्युत प्राणको आहुति देता हूँ'—यह भावना दृढ़ हो जायगी और भोजनमें आसक्ति नहीं रहेगी। इससे स्वादबुद्धिका अन्त हो जायगा और स्वादका अभाव हो जानेपर वीर्यरक्षा बड़ी सुगमतासे हो जाती है। जो भोजनका संयम नहीं कर सकता, वह वीर्यरक्षा नहीं कर सकता। वीर्यरक्षाके बिना बुद्धि आदिमें सात्त्विकता नहीं आती। अतः साधकको भोजन समझ-बूझकर करना चाहिये। देखो, एक-एक ज्ञानेन्द्रियसे एक-एक कर्मेन्द्रियका सम्बन्ध है। जो स्वादको नहीं जीत पाता, वह उपस्थको नहीं जीत सकता, जैसे जो सुन नहीं पाता, वह बोल भी नहीं सकता। अतएव भोजनमें भोगबुद्धि न होकर प्रसाद-बुद्धि लानेसे साधकका सारा साधन सहज एवं स्वाभाविक हो जाता है और उसे व्यर्थके खटरागोंमें नहीं उलझना पड़ता।

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक बहुत बढ़िया बात है। अगर आप ध्यान दें तो निहाल हो जायँ। जैसे अभी हमलोग यहाँसे दूसरी जगह जा रहे हैं तो हमारी भावना है कि हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं, ऐसे ही आपलोगोंके हृदयमें यह बात जँच जाय कि हमलोग यहाँ आये हैं, यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। भगवान्ने कहा है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** (गीता १५।७) 'यह जीवात्मा अनादिकालसे मेरा ही अंश है और **'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** (१५।६), **'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'**(८।२१) 'जिसे प्राप्त होकर जीव लौटकर संसारमें नहीं आता, वह मेरा परम धाम है। तात्पर्य यह है कि हम भगवान्के हैं और भगवान्का जो धाम है, वह खास हमारा घर है। उसके सिवाय हम चाहे किसी लोकमें जायँ, वह हमारा घर नहीं है। भगवान्का जो घर है, वही हमारा घर है। उसे छोड़कर हम दूसरी जगह जायँगे तो उलझ जायँगे, समय बरबाद हो जायगा, मिलेगा कुछ नहीं। केवल भटकते रहेंगे। कारण कि वह अपना घर नहीं, अपनी चीज ही नहीं। भगवान्के सिवाय अपना कोई है ही नहीं, हम किसीके हैं ही नहीं।

हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। हम यहाँ आये हैं और एक दिन यहाँसे चले जायँगे। यहाँ काम अच्छे-से-अच्छा, उत्तम-से-उत्तम करना चाहिये, पर भीतरमें भाव यह रहना चाहिये कि हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं, हमें यहाँसे जाना है, हमारा घर यह नहीं है। यह शरीर यहाँ पैदा हुआ है, हम यहाँ पैदा नहीं हुए हैं। हम परमात्माके अंश हैं। इस घरमें, इस शरीरमें हम पहले नहीं थे और फिर नहीं रहेंगे, तो यह हमारा कैसे हुआ?

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८।१६)

किसी भी लोकमें जाओ, वहाँसे लौटकर आना ही पड़ेगा, परंतु भगवान्को प्राप्त होनेके बाद पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि वह घर तो अपना है। आप बढ़िया-से-बढ़िया जगहमें जाकर ठहरें, बड़े-बड़े होटलोंमें ठहरें, जहाँ एक दिनके हजारों रुपये लगते हों, परंतु वहाँ आपका स्थायी रहना नहीं होगा और छप्पर है, पक्का मकान भी नहीं है, पर वह अपना घर है तो वहाँ आपको कौन मना करेगा? वहाँ आप मौजसे रहेंगे। आप दिनभर भटके, कहीं रोटी नहीं मिली, जल नहीं मिला, ठौर नहीं मिली, बैठनेकी जगह नहीं मिली, कष्ट पाते रहे, पर आखिर किसीके सहारे घर पहुँच गये तो पहुँचते ही एक सुख मिलता है। घर पहुँचनेपर अभी रोटी नहीं मिली, जल भी नहीं पीया, आराम भी नहीं किया, कुछ नहीं लिया, फिर भी मनमें एक सुख होता है कि भूले-भटके घरपर आ गये, अब कोई चिन्ता नहीं। इसी तरह हम भगवान्को याद करते हैं, भगवान्का भजन करते हैं तो हम अपने घरपर आ गये। अगर हम भगवान्का भजन नहीं करते हैं तो भाई! हम अभी घरपर नहीं पहुँचे, अभी भटकते हैं। घरपर पहुँचे बिना चिन्ता नहीं मिटती, अभाव नहीं मिटता। आज यह जो चिन्ता हो रही है कि यह करना है, वह करना है, उनसे मिलना है, यह लेना है, यह देना है—यह मिटेगी नहीं और घर पहुँचनेके बाद यह चिन्ता रहेगी नहीं। घरपर पहुँच गये तो अब मौज करो। अब न कहीं जाना है, न कुछ लेना है। अब रसोई बनाओ, प्रसाद पाओ, आरामसे सोओ, कार्य करो, बैठो। अब कहीं जाना नहीं है, कुछ करना नहीं है, कुछ लेना नहीं है, कुछ देना नहीं है। परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद हमारे लिये करना बाकी नहीं रहता, जानना बाकी नहीं रहता, पाना बाकी नहीं रहता।

इसमें एक बात और ध्यान देनेकी है कि भगवान्का घर पहलेसे ही अपना है, अपना बनाया हुआ नहीं है। ऐसे ही भगवान्की प्राप्ति कृतिसाध्य नहीं है, हमारे करनेसे नहीं होती, वह तो स्वतः सिद्ध है। करनेसे दूसरे पदकी, दूसरी स्थितिकी प्राप्ति होती है। जैसे, कोई पद प्राप्त करना हो तो उसकी प्राप्तिके लिये योग्यताका सम्पादन

करना पड़ता है; क्योंकि योग्यताके बिना वह पद मिलता नहीं। हम कहीं हेडमास्टर बनना चाहें तो हेडमास्टरकी योग्यता प्राप्त करनी पड़ेगी, मैनेजर बनना चाहें तो मैनेजरकी योग्यता प्राप्त करनी पड़ेगी, परंतु अपने घरमें जानेके लिये क्या करना पड़ेगा? जैसे हैं, वैसे ही जाना है। प्रत्येक जगह जानेका आपको अधिकार नहीं मिलता, पर अपने घर जानेका आपको पूरा अधिकार है। छोटा बालक कहीं जाय तो डरता है, पर माँकी गोदमें जानेमें क्या जोर आये? वहाँ तो अपना हक लगता है कि मेरी माँ है, मैं अपनी माँकी गोदमें बैठूँगा। ऐसे ही भगवान् तो मेरी माँ हैं—**'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'**, उनपर अपना हक लगता है।

परमात्माके सिवाय और कोई अविनाशी वस्तु नहीं मिलेगी। कोई शरीर मिलेगा तो नष्ट होनेवाला मिलेगा। कोई लोक मिलेगा तो वहाँसे भी निकलना पड़ेगा—**'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गीता ९। २१), परंतु परमात्मा ऐसे नहीं हैं कि इतना हो गया, अब चलो यहाँसे। वह तो हमारा घर है। वहाँसे निकालनेवाला कोई है ही नहीं। उस घरमें जानेमें कोई उद्योग, पुरुषार्थ नहीं है। दूसरी जगह जानेमें तो उद्योग करना पड़ता है, योग्यता सम्पादन करनी पड़ती है, अधिकार प्राप्त करना पड़ता है, तब वहाँ जा सकते हैं, परंतु अपने घर जानेमें तो स्वतः सिद्ध, जन्मसिद्ध अधिकार है। जैसे, जिस घरमें आपके शरीरका जन्म हुआ है, उस घरको आप अपना कहते हैं कि हम तो इसमें ही जन्मे हैं, इसमें ही रहते हैं, यह तो हमारा घर है, इसमें हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे ही अपना (स्वयंका) भगवान्‌के यहाँ जन्मसिद्ध अधिकार है। यह एक वहम है और बड़ा जबर्दस्त वहम है कि 'हम इतनी तपस्या करेंगे, इतना त्याग करेंगे, इतना भजन करेंगे, इतना योगाभ्यास करेंगे, इतना उद्योग करेंगे, तब भगवान् मिलेंगे। उनकी प्राप्ति इतनी जल्दी थोड़े ही होगी, देरीसे होगी, कुछ करनेसे होगी। जैसे संसारमें पद, अधिकार, धन आदि प्राप्त करनेके लिये उद्योग, परिश्रम करना पड़ता है, ऐसे ही भगवत्प्राप्तिके लिये भी इतना-इतना करना पड़ेगा, तब उसकी प्राप्ति होगी।' यह एक जबर्दस्त वहम है, जिसे जल्दी दूर नहीं कर सकते; क्योंकि ऐसी बातें कहीं मिलती नहीं हैं।

परमात्मा भी अविनाशी है और उसका अंश होनेसे हम भी अविनाशी हैं—

राम मरे तो मैं मरूँ, नहिं तो मरे बलाय।
अविनाशीका बालका, मरे न मारा जाय॥

हम अविनाशी परमात्माके बालक हैं, इसलिये हम मर नहीं सकते। शरीर तो यहाँ पैदा हुआ है, वह तो मरेगा ही। शरीर मरे बिना रह नहीं सकता, जिसने जन्म लिया है, उसे मरना ही पड़ेगा।

ऊगा सोई आथवें, फूला सो कुम्हलाय।
चिण्या देवल ढह पड़े, जाया सो मर जाय॥

हम परमात्माके अंश हैं। हम पैदा नहीं हुए हैं। हम तो सदासे ही परमात्माके हैं। वह खास हमारा घर है। वहाँसे हमें निकालनेवाला है ही कौन? कोई निकाल नहीं सकता वहाँसे। वहाँ हमारा अधिकार है, हमारा हक लगता है। बिना रजिस्ट्री कराये स्वतः हमारा घर है वह। और कहीं भी जाओगे तो पुण्य और पापके अनुसार फल भोगना पड़ेगा और उतना ही वहाँ ठहरना पड़ेगा। अधिक टिक नहीं सकते। कारण कि वह मूल्यसे मिलनेवाली चीज है। वह कबतक रहेगी? यहाँ भी श्वास समाप्त होते ही चलना पड़ेगा; क्योंकि यहाँ तो हम पाप-पुण्यका फल भोगनेके लिये आये हुए हैं। यहाँ हरदम कैसे रह सकते हैं? अभी सत्संगमें बैठे हैं। सत्संग समाप्त होनेपर कहेंगे कि चलो भाई, अब अपने-अपने घर जाओ, परंतु घरमें हम बैठें, जल पीयें, आराम करें, जो कुछ करें; क्योंकि हमारा घर है। ऐसे ही परमात्माका घर हमारा घर है। जबतक उसे प्राप्त नहीं होते, तबतक हम भटकते हैं, कहीं भी टिक नहीं सकते।

ईश्वर जिसपर प्रसन्न होता है, उसे नदीकी-सी दानशीलता, सूर्यकी-सी उदारता और पृथ्वीकी-सी सहनशीलता प्रदान करता है।

आहार-शुद्धि

(श्रीहरिरामजी गर्ग)

[गताङ्क पृष्ठ ७३९ से आगे]

क्रिया-दोष

पदार्थ चाहे उपाय-दोषसे दूषित न हो, वह शुद्ध न्यायोपार्जित द्रव्यसे आया हो और उसमें स्वरूपसे भी कोई दोष न हो, परंतु यदि उसे विधिपूर्वक काममें न लिया जाय तो वह भी दोषयुक्त हो जाता है। पदार्थका यह तीसरा दोष 'क्रिया-दोष' है। क्रिया-दोषसे दूषित पदार्थ भी मनको दूषित करता है और शरीरमें भी अनेक विकार ला सकता है, अतएव इस दोषके सम्बन्धमें भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

रसोई-स्थान—जहाँ भोजन बनाया जाय, वह स्थान खुला न हो, जिसमें रेत आदि उड़कर पड़े या पक्षियोंद्वारा भोजनमें कोई दोष आये। उस स्थानपर पशु भी न पहुँच जायँ, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। रसोई-स्थान कच्चा ही श्रेष्ठ होता है, जिसमें वहाँ मिट्टी-गोबरका नित्य चौका लगाया जा सके। रसोई-स्थानको शनिवार और गुरुवारको गोबरसे नहीं पोतना चाहिये। इन दिनों मिट्टीसे पोतना चाहिये। सप्ताहमें दो दिन अवश्य गोबरसे उसे स्वच्छ करना चाहिये। भोजनका स्थान रसोईके स्थानसे कुछ नीचा होना चाहिये और यदि ऐसा सम्भव न हो तो एक लकीर खींचकर रसोई-स्थानकी सीमा निश्चित कर देनी चाहिये। रसोई-स्थानमें बिना पैर धोये किसीको नहीं जाना चाहिये। भोजन-स्थानपर एक बार लोगोंके भोजन करके उठते ही गोबर या मिट्टीसे पोता दे देना चाहिये। रसोई बनानेवाला शुद्धाचरणयुक्त हो, भोजन करनेवालोंसे उसका स्नेह हो, उसके वस्त्र स्वच्छ एवं पवित्र हों और वह स्नान करके शुद्ध हो। उसे कोई रोग, मानसिक दुश्चिन्ता या भोजन बनानेमें अरुचि नहीं होनी चाहिये। आचारहीन, तैल लगानेपर जो स्नान न किये हो, श्मशानसे लौटकर जिसने स्नान न किया हो, कोई चमड़ेकी वस्तु पहने हो, इनका स्पर्श किया भोजन अपवित्र होता है। निम्न जातिका छुआ भोजन भी अपवित्र होता है। भोजनपर कुत्ते, किसी कदाचारी या निम्नजातिके पुरुष या भूखेकी दृष्टि पड़नेसे भोजनमें दृष्टि-दोष हो जाता है और वह अनेक शारीरिक एवं मानसिक विकारोंका कारण हो सकता है। काक आदिसे छुआ या स्पर्श अथवा दृष्टि-दोषसे दूषित अन्न फेंककर दूसरा बनाना चाहिये। भोजनके पदार्थोंपर मक्खी न बैठे, चूहे मुँह न लगा सकें, इसका भी ध्यान रखना चाहिये।

रसोईके उपकरणोंकी शुद्धि—रसोईके बर्तन भली प्रकार मलकर स्वच्छ किये गये हों। उनमें जूठन, मैल आदि न लगा हो। रसोईमें काम आनेवाले वस्त्र स्वच्छ तथा पवित्र हों। पीपलकी लकड़ी या पत्ते, पत्थरका कोयला नहीं जलाना चाहिये। इनसे अनेक रोगोंके होनेकी सम्भावना रहती है। चावल, दाल, शाक आदि स्वच्छ करके और भलीभाँति धोकर काममें लेने चाहिये। चावल ढेकीका कुटा तथा आटा हाथचक्कीका पिसा उत्तम होता है, दूधको छानकर ही काममें लेना चाहिये। घी, नमक, मसाला आदि ढककर सावधानीपूर्वक रखना उचित है।

भोजनके काममें तथा पीनेके लिये स्वच्छ, शीतल, गन्धहीन छानकर रखा हुआ कुएँका जल ही उत्तम है। चमड़ेके पात्रका, तैलके इंजिनसे निकाला और नलका जल शुद्ध नहीं होता। पवित्र नदियोंका स्वच्छ जल कामके योग्य होता है और गङ्गाजल सदा पवित्र रहता है। कूपजल ताजा ही कामके योग्य होता है। विधर्मी एवं अस्पृश्य जातियों तथा रजस्वला स्त्रीसे स्पृष्ट जल अपवित्र होता है। जलको पवित्रतापूर्वक स्नान करके ही लाना चाहिये। उसे वस्त्रसे छानकर ढककर रखना चाहिये और रात्रिका रखा जल काममें नहीं लेना चाहिये। तवेपर मुखसे नहीं फूँकना चाहिये और अग्निको भी मुखसे नहीं फूँकना चाहिये। किसी पात्रको पैरोंसे नहीं छूना चाहिये। मिट्टी, काँच, पत्थर और लकड़ीके बर्तन जूठे होनेपर

फिर कामके योग्य नहीं होते, अतः इनमें भोजन नहीं करना चाहिये।

भोजन—बलिवैश्वदेव करके, अग्निमें अन्नकी आहुति देकर, हन्तकार निकालकर उसे किसी योग्य सत्पुरुषको देकर, पहले अतिथि, बालक, रोगी, वृद्ध और नौकरों आदिको भोजन कराना चाहिये। हन्तकार-भाग निकालनेका अर्थ है भगवान्‌के निमित्त अन्न निकालना। प्रत्येक पदार्थमेंसे इतना अंश निकालना चाहिये जिससे एक व्यक्ति भोजन कर ले और उससे किसी उत्तम व्यक्तिको भोजन कराना चाहिये। इसीके साथ गौका तथा अन्यान्य पशु-पक्षियों तथा कीटोंका भाग भी निकालना चाहिये।

घरमें जितने सदस्य हों, उनमें बालकों, वृद्धों और रोगियोंको तथा अतिथि और अभ्यागतोंको भोजन करानेपर जो बचे, वह सबका भाग होता है। भोजनमें भेद करना पाप है। घरके लोगों और सेवकोंके भोजनमें कोई भेद नहीं होना चाहिये। इस प्रकारके भेदभावसे भोजन करनेवालेके अन्नमें 'भाव-दोष' होता है और इससे अनेक रोग हो सकते हैं। रसोई नित्ययज्ञ है, रसोई बनानेवाला यज्ञकर्ता है और भोजन करनेवाले सभी विष्णुरूप आमन्त्रित हैं; अतः रसोई बनाने या परोसनेवालेको भेदभाव तनिक भी नहीं आने देना चाहिये। जिसे घटिया अन्न दिया जाता है, उसका कुछ नहीं बिगड़ता, पर जिसे अच्छा दिया जाता है, उसके अन्नमें भावदोष होता है। भेद करनेवाला तो पापका भागी होता ही है।

सूर्योदयसे पूर्व, मध्याह्नमें (लगभग साढ़े ग्यारहसे साढ़े बारहतक) और सूर्यास्तसे डेढ़ घड़ी पहलेसे तारे उगनेतक भोजन नहीं करना चाहिये। इस सायंकालकी गोधूलि-वेलामें भोजन करनेसे उसपर प्रेतोंकी दृष्टि पड़ती है और वह दूषित हो जाता है। रात्रिमें तिल तथा तेलकी वस्तुएँ वर्जित हैं।

स्नान करके ही भोजन करना चाहिये। स्नान-संध्यादिसे निवृत्त होकर, पैर धोकर, नंगे सिर भोजन करना चाहिये। पहननेके वस्त्र उतारकर भोजन करना उचित है, पर केवल एक वस्त्रसे भी भोजन करना निषिद्ध है। भोजनके समय उत्तरीय (अंगोछा आदि) शरीरपर रखना चाहिये। भोजन जिस पात्रमें बना है उसमें रखकर, हाथपर, कागजपर रखकर, कुर्सी-मेजपर नहीं करना चाहिये। जूते पहने, खड़े-खड़े, चलते हुए कुछ भी नहीं खाना चाहिये। भूमिपर आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठकर, शान्तचित्तसे, पवित्र होकर, मौन होकर भोजन करना उचित है। भोजन पूर्व या उत्तर मुख बैठकर करना चाहिये। बासी, रसहीन, दुर्गन्धित, जूठा, अपवित्र, अधपका, अधिक पका, जला हुआ, सड़ा, खुर्चा, रोष या घृणापूर्वक दिया, अपरिचित या निन्दित व्यक्तिसे दिया, अपवित्र अन्न नहीं खाना चाहिये। एक वर्णके लोगोंको ही एक पंक्तिमें बैठना चाहिये। एक साथ पंक्तिमें बैठे लोगोंको आगे-पीछे नहीं उठना चाहिये। भोजनके समय एक दूसरेका स्पर्श नहीं करना चाहिये। भोजनके पश्चात् दो घंटेसे पूर्व नहीं सोना चाहिये।

दृष्टि—भोजनपर पिता, माता, बन्धु, पुण्यात्मा जन, वैद्य, हंस, मयूर और चकवेकी दृष्टि पड़ना शुभ होता है। नीच, दरिद्र, भूखे, रोगी, लम्पट, अधर्मी, मुर्गे, सर्प, कुत्ते और किसी भी द्वेष, घृणा, क्रोधसे युक्त व्यक्तिकी दृष्टि भोजनपर पड़े तो उस अन्नको छोड़ देना चाहिये। यदि भोजन छोड़ना शक्य न हो तो इस श्लोकको पढ़ते हुए भोजन करना चाहिये—

अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टिदोषविनाशाय हनूमन्तं स्मराम्यहम्॥

पञ्चग्रास—सबसे प्रथम भोजनमें ये पाँच मन्त्र पढ़ते हुए क्रमशः पाँच ग्रास मुखमें डालने चाहिये— **१-ॐ प्राणाय स्वाहा, २-ॐ अपानाय स्वाहा, ३-ॐ व्यानाय स्वाहा, ४-ॐ उदानाय स्वाहा, ५-ॐ समानाय स्वाहा।** ऐसा करनेसे भोजन यज्ञमय हो जाता है। भोजन भगवत्प्रसादबुद्धिसे यज्ञशेष मानकर करना ही सर्वोत्तम है।

अन्नमें स्वादबुद्धि नहीं होनी चाहिये। उसे शरीरके लिये ओषधि मानकर उपचारकी भाँति जितना आवश्यक हो, लाभकर हो, उतना ही करना चाहिये। अन्नको रुचिपूर्वक आदरभावसे ही भोजन करना चाहिये। अरुचि एवं उपेक्षापूर्वक किया गया भोजन ठीक पचता नहीं। उदरके दो भागको अन्नसे, एकको जलसे पूर्ण करके एक भाग वायुके लिये खाली रहने देना चाहिये। पर

भोजनके अन्तमें तुरंत बहुत जल पीना हानिकर है। किसीके द्वारा उल्लङ्घन किया भोजन या जल भी काममें नहीं लेना चाहिये।

भोजनके पश्चात्—भोजनके पश्चात् मुखको जलसे अच्छी तरह स्वच्छ कर लेना चाहिये। फिर भीगे हाथ नेत्रोंपर फेरने चाहिये। इसके पश्चात् १०० पद घूमकर लेटना अच्छा है। तुरंत दौड़ना या कोई कठोर काम नहीं करना चाहिये।

व्रतोपवासादि—व्रत एवं उपवासके तो हमारे शास्त्रोंमें बहुत विधान हैं और उनके लाभ भी अपार हैं, परंतु यहाँ आहारके विवेचनमें इतना ही जानना चाहिये कि एकादशीको चावलका भोजन अत्यन्त वर्जित है। ग्रहणके दोषकालमें आहार ग्रहण करना या जल पीना निषिद्ध तो है ही, हानिकारक भी है। शरीरके लिये आहार जितना आवश्यक है, व्रत भी एक सीमामें उतने ही आवश्यक हैं और निषिद्ध समयोंमें तो आहार ग्रहण करना ही नहीं चाहिये।

उपसंहार—इस प्रकार आहारके सम्बन्धमें सभी दोषोंको बचाकर जबतक अन्नका ग्रहण नहीं किया जाता, तब-तक मानसिक दोषोंसे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। हम जो भोजन करते हैं, उसीसे मन बनता है—**जैसा अन्न वैसा मन**। अतएव शरीरकी आरोग्यता और मनकी पवित्रताकी प्राप्ति तथा रक्षाके लिये भी आहारको ही पहले पूर्णतया शुद्ध होना चाहिये। —(समाप्त)

भगवान् कपिल और उनका दर्शन

(पं० श्रीआद्यानाथजी झा 'निरंकुश')

भारतीय दार्शनिकोंमें भगवान् कपिलका मूर्धन्य स्थान है। इनके पिताका नाम कर्दम और माताका नाम देवहूति था। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें इनकी कथा आयी है। सरस्वती नदीके तटपर कर्दम ऋषिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने ऋषिसे कहा—'स्वायम्भुव मनु अपनी स्त्री शतरूपाके साथ तुम्हारे पास आयेंगे और अपनी पुत्री देवहूतिको पत्नीके रूपमें अङ्गीकार करनेके लिये तुमसे प्रार्थना करेंगे। तुम इसे मान लेना। तब मैं अपनी कलासे युक्त होकर तुम्हारे वीर्यद्वारा देवहूतिके गर्भसे जन्म लूँगा। अनन्तर मैं सांख्य-तत्त्वका प्रणयन करूँगा। यथा—

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २१। ३२)

आगे उन्होंने कहा कि 'तुम मेरी अनुकम्पासे समस्त विश्वको मुझमें और मुझे अपनेमें स्थित देखोगे।'

भगवान्‌के आदेशानुसार कर्दमने स्वायम्भुव मनुका प्रस्ताव तो स्वीकार कर लिया, किंतु एक शर्त रख दी। वह यह कि मैं तबतक गृहस्थाश्रममें रहूँगा, जबतक इसे संतान न हो जाय। अनन्तर मैं संन्यस्त हो जाऊँगा। मनुने इसे स्वीकार कर लिया।

देवहूति मन, वचन एवं कर्मसे पति-सेवामें लीन रहने लगी। इससे प्रसन्न होकर कर्दमने अपने तपोबलसे पत्नीको समस्त भू-मण्डलका दर्शन करवा दिया। उसी देवहूतिके गर्भसे नौ कन्याओंके पश्चात् कर्दमको कपिल नामका पुत्र प्राप्त हुआ।

एक दिन एकान्तमें ऋषिने अपने पुत्र भगवान् कपिलकी स्तुति करनेके पश्चात् कहा कि अब मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा मिले। जिससे विरक्त होकर मैं आपकी आराधना कर सकूँ। बालक कपिलने 'तथास्तु' कह दिया और वे बोले—'मैंने अपना वचन पूरा कर लिया। मेरा जन्म मुनियोंके लिये आत्मज्ञान देनेके हेतु हुआ है। वही ज्ञान अब मैं अपनी माताको दूँगा।'

कर्दमके वन चले जानेपर कपिल बिन्दुसरोवरके तटपर मातृ-कल्याणकी इच्छासे रहने लगे। यथा—

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया।
तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद् भगवान् कपिलः किल॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। ५)

एक दिन माताको सम्बोधित कर भगवान् कपिलने कहा—'मातः! अध्यात्मयोग ही कल्याणका प्रधान साधन है। इसीसे दुःख-सुखकी निवृत्ति होती है। जीवके लिये बन्धन तथा मोक्षका कारण मन है। विषयोंमें लीन होनेपर जब मन बन्धनका कारण बन जाता है, तब परमात्मामें लीन होनेपर मोक्षका कारण भी यही है। अतः सर्वदा मनको ईश्वरमें ही लीन रखनेकी प्रवृत्ति रखनी चाहिये। इसे ही अहैतुकी भक्ति कहते हैं। योगिजन ज्ञान तथा वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा ही मेरी शरणमें पहुँचते हैं। इसी क्रममें उन्होंने कहा कि—

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। २२)

अर्थात् 'अपने भाई-बन्धुओं एवं सभी कामोंको त्यागकर जो अनन्य-भावसे मुझमें दृढ़ भक्ति रखते हैं, वे ही मुझे प्राप्त करते हैं।'

मातः! आत्मज्ञान ही मुक्तिका मूल कारण है। यह समस्त संसार जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है। इसे ही विष्णु कहा जाता है। **'विश्वं व्याप्नोति योऽसौ विष्णुः।'** अर्थात् जो संसारको व्याप्त करता है, वही विष्णु है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे और अन्तःकरणमें स्फुरित होनेवाला स्वयं प्रकाशस्वरूप है। त्रिगुणात्मिका मायाको उसने स्वीकार कर लिया है। उस पुरुषके आदेशानुसार लीलापरायण प्रकृति अपने सत्त्वप्रधान गुणके द्वारा प्रजाकी सृष्टि करती है। इसके महामोहक आवरणको देखकर मानव मोहित हो जाता है। प्रकृतिके गुणसे होनेवाले कर्मको देखकर व्यर्थमें मनुष्य अपनेको कर्त्ता मान लेता है। वे आगे कहते हैं—

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः।
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। १६)

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ आदि मानसिक मलोंके द्वारा ही 'मैं हूँ' और 'यह मेरा है'—इस प्रकारके अहंकारका भाव उदित होता है। इन मनोमलोंसे मुक्त होनेपर चित्त शुद्ध होता है, तब इसके लिये दुःख-सुख सब समान हो जाते हैं।

मातः! जैसे जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यके साथ जलकी शीतलता, चञ्चलता आदि गुणोंका सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार प्रकृतिके कार्यरूप शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा वास्तवमें उसके सुख-दुःख आदि धर्मोंसे निर्लिप्त रहता है। वह निर्विकार, अकर्ता एवं निर्गुण है, परंतु वही जब प्राकृत गुणोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब वह देहके संसर्गसे कृत सत्-असत्-कर्मोंके दोषसे उत्तम, मध्यम तथा नीच योनियोंमें जन्म लेकर संसारचक्रमें परिभ्रमण करता है। अविद्यावश जीवका यह चक्र कभी नहीं रुकता। अतः मानवको चाहिये कि विषयासक्त चित्तको तीव्रतम भक्तियोग तथा पूर्ण वैराग्यके द्वारा धीरे-धीरे वशमें कर ले।

आगे भगवान् कपिलका कथन है कि 'वह श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे चित्तको एकाग्र कर मुझमें सच्चा भाव रखे। मनुष्य मेरी कथाके श्रवणसे, सभी प्राणियोंके प्रति समभाव रखनेसे, अनासक्ति, त्याग, ब्रह्मचर्य, मौनव्रत आदि पवित्र कर्मोंसे ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है। प्रकृति उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती।'

भगवान् कपिलकथित एतादृश ज्ञानामृत ही कापिलेयदर्शन या सांख्यतत्त्वके नामसे सुविख्यात है।

अपने पुत्रके इस दिव्योपदेशसे देवहूतिका मोहान्धकार दूर हो गया और वे समाधिमें लीन होकर चिरमुक्त हो गयीं।

जो आँखें ईश्वरकी सेवामें रहनेमें कल्याण नहीं मानतीं, उनका तो फूट जाना ही अच्छा है। जो जीभ ईश्वरकी चर्चा नहीं करती, वह गूँगी ही रहे तो अच्छा। जो कान सत्य नहीं सुनते, वे बहरे ही रह जायँ तो अच्छा और जो तन ईश्वरकी सेवामें नहीं लगता, उसका मर जाना ही अच्छा है।

'हनुमानबाहुक' के पौराणिक कथा-संदर्भ

(डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

यह सर्वविदित है कि गोस्वामी तुलसीदासजीने 'नानापुराणनिगमागम' का अध्ययन किया था और उनमें विशेषतः पुराणोंमें वर्णित कथा-संदर्भोंको अपनी रचना-प्रक्रियामें अपने ढंगसे कुशलताके साथ गूँथा था। ज्ञातव्य है कि तुलसीदासजीने अपनी सम्पूर्ण रचना-मनीषाका पृष्ठाधार समस्त भारतीय आर्ष ग्रन्थों तथा श्रुति-स्मृतियोंको बनाया है। अपने रचनाक्रममें उन्होंने उन सभी तत्त्वोंको देखा है, जिन्हें सबने देखा है, किंतु उन्होंने जो सोचा है, उसे उनके पूर्ववर्तियोंमें किसीने नहीं सोचा है। यही सोच या चिन्तन तुलसीदासजीका रचनागत वैशिष्ट्य या वैलक्षण्य है। इस प्रकार अपूर्व ग्रथन-कौशल और परम्परागत चिन्तनके मौलिक अनुचिन्तनके कारण ही गोस्वामीजीकी रचनाएँ नव्य और भव्य बन गयी हैं। 'हनुमानबाहुक' उनकी इसी प्रकारकी रचनाओंमें अन्यतम है। यहाँ 'हनुमानबाहुक'में वर्णित पौराणिक कथा-संदर्भोंपर प्रकाश-निक्षेप अपेक्षित है।

'हनुमानबाहुक' के प्रथम छप्पय छन्दमें ही संकटशमन हनुमान्‌जीके विशेषणोंमें उनके समुद्र लाँघकर लङ्का जाने ***(सिंधुतरन)***, वहाँ रावणकी अशोकवाटिकामें बंदिनी सीताजीके शोक दूर करने ***(सिय-सोच-हरन)***, लङ्कानगरीको जलाने ***(गहन-दहन-निरदहन-लंक)*** और बलशाली राक्षसों-का मान-मर्दन करने ***(जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन)***-की रामायण-वर्णित प्रख्यात कथाके प्रसंगोंको संदर्भित किया गया है।

पद (घनाक्षरी) सं० ४ में सूर्यके समीप विद्याध्ययनके लिये हनुमान्‌जीके जानेकी पौराणिक कथा संदर्भित की गयी है। तुलसीदासजीद्वारा प्रस्तुत यह पुराण-कथा इस प्रकार है—एक बार हनुमान्‌जी विद्या पढ़ने सूर्यके समीप गये। सूर्यने मनमें बालकका खेल समझकर बहाना किया कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सामनेके पढ़ना-पढ़ाना सम्भव नहीं है। हनुमान्‌जीने सूर्यकी ओर मुख करके पीठकी ओरसे पैरोंद्वारा प्रसन्न-मनसे बालकोंके खेलके समान गमन किया, फिर भी पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्रम नहीं हुआ। इस अद्भुत खेलको देखकर इन्द्र आदि लोकपाल, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माकी आँखें चौंधिया गयीं और उनके चित्तमें खलबली-सी पैदा हो गयी।

पद (घनाक्षरी) सं० ५ में महाभारतकी एक कथा संदर्भित हुई है, जिसमें इस बातका संकेत है कि महाभारत-संग्राममें अर्जुनके रथकी ध्वजापर कपिराज ***(भारतमें पारथके रथकेतु कपिराज····)*** हनुमान्‌जीने गर्जन किया था, जिसे सुनकर दुर्योधनकी सेनामें घबराहट छा गयी थी। इसपर द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह-जैसे महाबलीको भी कहना पड़ा था कि 'हनुमान् महाबली पवनकुमार हैं।'

महाभारतके आदिपर्वमें खाण्डवदाहकी कथा वर्णित है। खाण्डव-वनको जलानेके लिये अग्निदेवने वरुणदेवसे कपिध्वज नामक रथ प्राप्तकर अर्जुनको दिया था, जिसकी ध्वजापर हनुमान्‌जीकी मूर्ति बनी हुई थी। तभीसे अर्जुनका अपर अभिधेय 'कपिध्वज' हो गया।

पद (घनाक्षरी) सं० ६में रामायणमें वर्णित हनुमान्‌जीकी वीरताकी कहानी कही गयी है कि किस प्रकार उन्होंने समुद्रको गोपद (गायका खुर डूबने लायक गहरा) बनाकर उसे पारकर लङ्का पहुँच गये और होलिकाके सदृश उस स्वर्णनगरीको जला डाला। यहाँ तुलसीदासजीने पुराणप्रसिद्ध होलिका-दाहकी कथाकी ओर भी संकेत किया है। इसके अतिरिक्त इस पदमें एक और रामायण-कथा संदर्भित है—

द्रोन-सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,
कंदुक-ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो।

श्रीराम-रावण-युद्धमें शक्ति-बाणके प्रहारसे लक्ष्मणके मूर्च्छित होनेपर उनकी जीवनरक्षाके निमित्त संजीवनी बूटी प्राप्त करनेके लिये हनुमान्‌जी द्रोणाचलको ही ऐसे उठा लाये थे, जैसे वह वानरके खेलके लिये बेलका फल हो।

पद (घनाक्षरी) सं० ७में *'कमठकी पीठि'*से विष्णुके कच्छपावतारकी पौराणिक कथा (भागवत १।३।१६ तथा ८।७।८) की ओर संकेत किया गया है। ज्ञातव्य है कि देवों और असुरोंद्वारा किये गये समुद्र-मन्थनके समय विष्णुने कमठरूप धारणकर अपनी पीठपर मन्थनदण्डरूप मन्दराचलका भार वहन किया था।

महाकवि तुलसीदासजीने पद (घनाक्षरी) सं० ९में प्रयुक्त *'बामदेवको निवास'* तथा पद (घनाक्षरी) सं० १४में उल्लिखित *'बामदेव-रूप'*—इन विशेषणोंसे हनुमान्‌जीके ग्यारहवें रुद्रमें अन्यतम होनेका संकेत किया है। शिवपुराण (अ० १९-२०)के अनुसार हनुमान्‌जी शिवके अवतार हैं।

पद (सवैया) सं० १९में हनुमान्‌जीके लिये जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, वे श्रीरामकथाके पौराणिक प्रसङ्गोंकी ओर संकेत करते हैं। इन विशेषणोंमें किशोरावस्थामें अवस्थित केसरीके सदृश हनुमान्‌जीद्वारा रावणपुत्र अक्षयकुमारको मृत्युलोक पहुँचाने, अशोकवाटिकाको ध्वस्त करने और मेघनाद, अकम्पन (रावणका अनुचर) एवं कुम्भकर्णके मदको चूर करनेकी घटनाएँ पुराणोक्त श्रीरामकथासे सम्बद्ध हैं।

पद (घनाक्षरी) सं० २१ में गोस्वामी तुलसीदासजीने राहुमाता सिंहिकाकी चर्चाद्वारा एक पौराणिक कथाको ही संदर्भित किया है। श्रीमद्भागवत (६।६।३७-३८) में कथा है कि प्रजापति कश्यप ऋषिकी पत्नी तथा दक्षकी पुत्री दितिके गर्भसे उत्पन्न तीन संतानोंमें एक (पुत्री) का नाम सिंहिका था। शेष दो पुत्रोंके नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष थे। सिंहिकाका विवाह दानवश्रेष्ठ विप्रचित्तिसे हुआ था, जिसके राहु आदि एक सौ एक पुत्र थे। रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डकी कथा है कि राहुकी माता सिंहिका लङ्काके समीप समुद्रमें रहती थी, जो उड़ते हुए जीवको खींचकर पकड़ लेती और उसे खा जाती थी। समुद्र पारकर लङ्का जाते समय उसे (सिंहिकाको) हनुमान्‌जीने मारा था।

पद (घनाक्षरी) सं० २२में *'मकरी'*के संदर्भोल्लेख-द्वारा पौराणिक कथाकी ओर ही संकेत किया गया है। मत्स्यपुराणके अनुसार मकर (स्त्री० मकरी) जलका निवासी एक असुर था, जो सरोवरके जल-जीवोंको पकड़कर मार डालता था। इसीलिये तुलसीदासजीने हनुमान्‌जीसे अपने बाहु-पीड़ा-निवारणके लिये रूपकाश्रित काव्यभाषामें निवेदन किया है—

पोखरी बिसाल बाँहु, बलि बारिचर पीर,
मकरी ज्यों पकरिकै बदन बिदारिये॥

पद (घनाक्षरी) सं० २३में श्रीरामकथाके प्रसिद्ध प्रसंग सुबेलपर्वतपर बैठकर जाम्बवान्‌के सोचने (प्रतीक्षा करने)का उल्लेख हुआ है। कथा है कि जाम्बवान्‌ने सुबेलपर्वतपर बैठकर हनुमान्‌जीके लङ्कासे लौटनेकी प्रतीक्षा की थी। रामचरितमानस (लङ्काकाण्ड)के अनुसार यह लङ्कामें समुद्रतटपर स्थित त्रिकूट पर्वत था, जहाँ श्रीराम सेनासहित ठहरे थे।

इसी पदमें लंकिनी (*'लंकिनी ज्यों लातघात'*·····)-का भी उल्लेख हुआ है। रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डकी कथा है कि लङ्किनी एक राक्षसी थी। वह लङ्काकी पहरेदारी करती थी। लङ्का-प्रवेश करते समय हनुमान्‌जीने उसे एक ही घूँसेके प्रहारसे मार डाला था।

नाम लंकिनी एक निसिचरी।
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥
(सुन्दर० ३।१-२)

पद (घनाक्षरी) सं० २५में *'बकी बकभगिनी'*का संदर्भोल्लेख हुआ है। बकीका ही दूसरा नाम पूतना है। पूतना बालग्रहके रूपमें लोकप्रसिद्ध है। बालकृष्णको निगलनेका व्यर्थ प्रयास करनेवाले बकासुरकी बहन होनेके कारण ही वह बकी कहलाती थी। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध (१०।१२।१४)की कथा है कि पूतना वस्तुतः बलिकी पुत्री रत्नावली थी। विष्णुके समान बच्चेको दूध पिलानेकी कामनासे ही यह पूतना नामकी दानवी हुई थी। बालक श्रीकृष्णको मारनेके लिये मथुरापति कंसने

इसे गोकुल भेजा था। वहाँ यह अपने स्तनोंपर विष लगाकर गयी थी, किंतु दूध पीनेके व्याजसे श्रीकृष्णने इसका सारा रक्त चूसकर इसे मार डाला था। इसी पदमें तुलसीदासजीने इसे ***'पूतना पिसाचिनी'*** भी कहा है।

पद (घनाक्षरी) सं० २७ में हनुमान्‌जीद्वारा सुरसाके छलपूर्ण स्वभावको सुधारनेके प्रसंगका उल्लेख हुआ है। रामचरितमानस (सुन्दरकाण्ड १।१-२)के अनुसार यह समुद्रमें रहनेवाली एक प्रसिद्ध नागमाता थी। समुद्रको पार करते समय इसीने हनुमान्‌जीको रोका था और मुँह फैलाकर उन्हें खानेको तैयार हो गयी थी। समझानेपर भी जब इसने नहीं माना, तब हनुमान्‌जीने अपना शरीर इसके शरीरसे भी बड़ा बना लिया। यहाँतक कि ज्यों-ज्यों सुरसाने अपना शरीर बढ़ाया, त्यों-त्यों हनुमान्‌जीने इससे दुगुना अपना शरीर बढ़ा लिया। पुनः हनुमान्‌जीने छोटा रूप धारणकर इसके मुँहमें प्रवेश किया और वे इसके कानके मार्गसे बाहर निकल आये। इससे प्रसन्न होकर सुरसाने हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया और उनकी सफलताकी कामना की।

इसी पदमें रावणकी पत्नी और मेघनादकी माता मन्दोदरीको भी संदर्भित किया गया है। मन्दोदरी मय दानवकी अप्सरा रम्भासे उत्पन्न पुत्री थी (वायुपुराण ६८।२९)। पुराणानुसार पञ्चकन्या—अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती और मन्दोदरीमें इसकी गणना की जाती है (श्रीमद्भा० ९।१०।२४-२८)।

पद (घनाक्षरी)सं० ३१में तुलसीदासजीने एक पुराणकथा यह भी कही है कि हनुमान्‌जीके घूँसेके प्रहारसे रावण आहत हो गया था।

पद (घनाक्षरी) सं० ३८में तुलसीदासजीने कुम्भज (अगस्त्य) ऋषिके संदर्भका उल्लेख किया है—

कुंभजके किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय रामराय ऐसी हाल कहूँ भई है॥

अगस्त्य ऋषिके विषयमें पुराणकथा है कि ये बड़े प्रभावशाली ऋषि थे। इनके पिताका नाम मित्रावरुण था। ऋग्वेदके अनुसार उर्वशी अप्सराको देखकर मित्रावरुण कामपीड़ित हो गये, जिससे वीर्यपात हुआ और इसीसे अगस्त्यका जन्म हुआ था। सायण-भाष्यके अनुसार अगस्त्यकी उत्पत्ति एक घड़ेसे हुई, इसलिये वे 'कुम्भज' कहलाये। तारक तथा दूसरे असुरोंद्वारा पीड़ित संसारवासियोंका कष्ट देखकर वे समुद्रको चुल्लूमें भरकर पी गये थे। इसीलिये इन्हें 'समुद्रचुलुक' और 'पीताब्धि' भी कहते हैं। तुलसीदासजी अपनेको अगस्त्य मुनिका सेवक कहते हैं। राजा रामसे उन्होंने निवेदन किया है कि जो व्यक्ति समुद्रको चुल्लूमें भरकर पी जानेवालेका सेवक हो, वही गोपद (गोखुरकी गहराईवाले) जलमें डूब जाय तो आश्चर्यकी ही बात है। अर्थात् आप-जैसे कष्टनिवारक रामरायके रहते मैं साधारण-सी बाहुपीड़ासे विकल होऊँ, ऐसा क्या कहीं हो सकता है?

पद (घनाक्षरी) सं० ३९ में महाकवि तुलसीदासजीने सुबाहु, मारीच और ताडका ***(केतुजा)*** का संदर्भोल्लेख किया है।

वाल्मीकिरामायण (बालकाण्ड ३०।२२) के अनुसार सुबाहु एक राक्षस था, जो महर्षि विश्वामित्रके यज्ञमें विघ्न डाला करता था। यह ताडकाका पुत्र था और मारीचका भाई। महर्षि विश्वामित्रकी प्रार्थनापर श्रीरामद्वारा यह मारा गया था।

ताडका-पुत्र मारीचके पिताका नाम सुन्द था। सुन्द रावणका सेनापति था। रावणकी आज्ञासे यह सोनेका मृग बनकर पञ्चवटी गया था। सीताजीकी इच्छाके अनुसार श्रीराम इसे मारने गये थे और इसकी सहायतासे रावणने सीताजीका हरण कर लिया था। मारीच श्रीरामद्वारा मारा गया था।

ताडका या ताटका सुकेतु नामक यक्षकी पुत्री थी। सुकेतु बिहारमें बक्सरके ही निकट चरित्रवनमें रहता था। बक्सर (व्याघ्रसर)में ही महर्षि विश्वामित्रका आश्रम था। रामायणके अनुसार सुकेतु महान् पराक्रमी और सदाचारी था, किंतु इसके कोई संतान न थी। संतानके लिये की

गयी इसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने इसे ताडका नामकी कन्या दी। ताडका बड़ी शैतान निकली। यह महर्षि विश्वामित्रके तपस्या-यज्ञमें विघ्न डालती थी। इसे एक हजार हाथियोंका बल प्राप्त था। महर्षि विश्वामित्रके अनुरोधपर श्रीरामने इसका वध किया था।

इस प्रकार इस छोटी-सी कृतिमें महाकवि तुलसीदासजीने पुराणकी कथाओंका विपुल आकलन प्रस्तुत किया है, जिससे उनकी रामायण, महाभारत तथा पुराणोंके गहन अध्ययन-अनुशीलनकी विलक्षण क्षमताकी सूचना मिलती है। साथ ही पुराणोंमें वर्णित कथाओंके संदर्भानुकूल कला-वरेण्य-विनियोजनमें उनकी अद्‌भुत बौद्धिक निपुणता भी परिलक्षित होती है।

महाभारतके दिव्य उपदेश

'जो पुरुष दूसरेका कल्याण करता है, धर्मपर श्रद्धा रखता है, किसीके भी गुणोंमें दोषारोपण नहीं करता और वस्त्रकी भाँति साधुओंके छिद्रोंको ढकता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है।'

'जो निरन्तर काम, क्रोध, दम्भ, लोभ और कुटिलताको जीतता है तथा अपने धर्ममें संतुष्ट रहता है, वही शिष्ट पुरुष है।'

'अनसूया, क्षमा, शान्ति, संतोष, प्रियवादिता, काम-क्रोधका परित्याग, शिष्ट पुरुषोंके आचारका सेवन और शास्त्रज्ञानसहित कर्मपरायणता—यही शिष्टाचार है।'

'क्रोधी पुरुष न मारने योग्य प्राणियोंको भी मार डालता है, कठोर मर्मभेदी भाषणसे अपने गुरुजनोंको भी दुःख देता है, अतएव यदि अपनेमें तेज हो तो क्रोधको अवश्य जीतना चाहिये।'

'पुरुषोंको सदा ही क्रोधका त्याग करके शान्ति धारण करनी चाहिये। धर्मसे गिरा हुआ मनुष्य अच्छा हो सकता है, परंतु क्रोधी कभी अच्छा नहीं होता, यह निश्चित है।'

'दूरदर्शी लोग जिसे तेजस्वी कहते हैं, उस पुरुषमें क्रोध होता ही नहीं। तत्त्वज्ञानी विद्वान् उसे ही तेजस्वी मानते हैं, जो अपनेमें उत्पन्न हुए क्रोधको ज्ञानदृष्टिसे शान्त कर देता है।'

'मूर्खोंने सदा क्रोधको ही तेज मान रखा है, परंतु क्रोध तो रजोगुणका परिणाम है और सदा मनुष्योंका नाश करनेवाला है।'

'क्रोधके दोषोंको जाननेवाले विद्वानोंने इस लोक और परलोकमें परम कल्याणकी इच्छासे क्रोधको जीता है।'

'पृथ्वीपर क्षमाशील पुरुष हैं, इसीसे प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और उनका कल्याण होता है।'

'यदि मनुष्योंमें पृथ्वीके समान क्षमा करनेवाले पुरुष न हों तो मनुष्य-जातिमें कभी परस्परमें मेल न हो और सदा विग्रह बना रहे।'

'विद्वान् पुरुषको तो सदा ही क्षमा रखनी चाहिये, मनुष्य जब सुख-दुःखको समानरूपसे सहता है, तभी उसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है।'

'क्षमावान् पुरुष इस लोकमें सम्मान पाता है और परलोकमें परमगतिको प्राप्त होता है।'

'जिनके पास बहुत-सा धन होता है, वे शरीरको अच्छी तरह सजाकर नित्य विहार करते हुए अपने शरीरको सुख देते हैं, इससे उन्हें इस लोकमें तो सुख मिलता है, परंतु परलोकमें नहीं मिलता।'

'जो योगयुक्त हैं, तप करते हैं, स्वाध्यायमें लगे रहते हैं, जितेन्द्रिय हैं, किसी भी प्राणीका वध नहीं करते, उन लोगोंको यहाँ तो सांसारिक सुख नहीं मिलता, परंतु परलोकमें वे बड़े सुखी होते हैं।'

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें बन्ध और मोक्षका स्वरूप

रसोईके स्वच्छ बर्तनको चूल्हेपर चढ़ाते हैं तो उसपर बाहरसे धुआँ और भीतरसे अन्न चिपक जाता है और इस तरह उस बर्तनके साथ विजातीय द्रव्य (धुआँ और अन्न)-का सम्बन्ध हो जाता है। स्वच्छ कपड़ेपर मैल लग जाता है, दर्पणपर मैल आ जाता है, मकानमें कूड़ा-कचरा आ जाता है तो कपड़े, दर्पण और मकानके साथ विजातीय द्रव्यका सम्बन्ध हो जाता है, परंतु बर्तनको मिट्टी और जलसे साफ कर दिया जाय तो वह स्वच्छ (निर्मल) हो जाता है अर्थात् उसपर चिपका हुआ धुआँ और अन्न निकल जानेसे वह अपने स्वरूपमें आ जाता है। कपड़ेको साबुन और जलसे धोनेपर उसका मैल निकल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है, अपने स्वरूपमें आ जाता है। दर्पणको कपड़ेसे पोंछ दिया जाय तो उसका मैल उतर जानेसे वह स्वच्छ हो जाता है। मकानमें झाड़ू लगानेसे कूड़ा-करकट दूर हो जाता है तो वह स्वच्छ हो जाता है। इसी तरह यह जीवात्मा (स्वयं) प्रकृति और उसके कार्य शरीर आदिके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, उनके परवश हो जाता है तो इसमें अशुद्धि आ जाती है, यही बन्धन है, परंतु जब यह प्रकृति और उसके कार्यके साथ माने हुए सम्बन्धको छोड़ देता है, तब यह स्वच्छ (निर्मल) हो जाता है, इसे अपने स्वरूपका बोध हो जाता है, यही मोक्ष है।

जैसे बर्तनपर धुआँ और अन्न न लगे तो बर्तन स्वच्छ ही है, कपड़ेमें मैल न लगे तो कपड़ा स्वच्छ ही है, दर्पणपर मैल न होनेसे दर्पण स्वच्छ ही है, मकानमें कूड़ा-करकट न हो तो मकान स्वच्छ ही है, ऐसे ही यह जीवात्मा प्रकृतिके कार्य स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरको न पकड़े, उनके साथ अपनापन न करे, उन्हें अपना न माने तो यह मुक्त ही है। इन बर्तन, कपड़ा, दर्पण आदिसे इस जीवात्माकी यह विलक्षणता है कि ये बर्तन आदि मैलको स्वयं नहीं पकड़ते, किंतु इनपर मैल आ जाता है, चिपक जाता है, परंतु यह जीवात्मा स्वयं प्रकृतिके कार्य शरीर-इन्द्रियाँ आदिके साथ सम्बन्ध जोड़ता है, उन्हें अपना मानता है, जिससे यह बँध जाता है। सत्-असत्, शुभ-अशुभ योनियोंमें जन्म होनेका कारण गुणोंका सङ्ग ही है (१३। २१)। सम्पूर्ण प्राणी क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही पैदा होते हैं (१३। २६)। पर यह संयोग (सम्बन्ध) क्षेत्र नहीं करता, क्षेत्रज्ञ ही करता है। क्षेत्रके साथ सम्बन्ध जोड़ना ही बन्धन है और सम्बन्ध न जोड़ना ही मोक्ष है।

भगवान्‌ने कहा है कि पृथ्वी, जल, तेज आदि आठ भेदोंवाली मेरी 'अपरा प्रकृति' है और इससे भिन्न जीव बनी हुई मेरी 'परा प्रकृति' है। इस परा प्रकृति (जीवात्मा)-ने ही अहंता-ममता, कामना-आसक्ति आदि करके इस जगत्‌को धारण कर रखा है (७। ४-५)। इस जीवलोकमें जीव बना हुआ यह आत्मा मेरा ही सनातन अंश है, पर यह भूलसे प्रकृतिमें स्थित मन-इन्द्रियोंको खींचता है, उन्हें अपनी मानता है (१५। ७)। तात्पर्य यह है कि यह जीवात्मा स्वरूपसे स्वतः असङ्ग है, पर यह प्रकृतिके कार्य गुण, इन्द्रियाँ, शरीर आदिको स्वीकार कर लेता है, उनके साथ अपनापन कर लेता है, अतः यह बन्धनमें आ जाता है। यह स्त्री, पुत्र, धन आदिको जितना-जितना अपना मान लेता है, उतना-उतना यह बन्धनमें आ जाता है, परवश हो जाता है, परंतु यह उनके साथ माने हुए सम्बन्धका जितना-जितना त्याग कर देता है, उतना-उतना यह उनसे मुक्त हो जाता है।

यह स्वयं (जीवात्मा) प्रकृतिके सम्बन्धके बिना कुछ भी सांसारिक काम नहीं कर सकता। जब कुछ कर ही नहीं सकता, तो फिर यह (प्रकृतिके सम्बन्धके बिना) बन्धनमें पड़ ही नहीं सकता। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना कुछ भी न कर सकनेके कारण इसपर करनेकी जिम्मेवारी भी नहीं रहती और इसमें कर्तृत्व भी नहीं रहता। अतः

गीताने जगह-जगह इसे अकर्ता बताया है (१३ । २९, ३२-३३) ।

प्रकृतिके साथ माने हुए सम्बन्धको तोड़नेके तीन उपाय हैं—

(१) कर्मयोग—कर्मयोगके द्वारा बन्धनसे मुक्त होनेका ढंग यह है कि मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरसे जो कुछ करता है, उसे केवल लोकसंग्रहके लिये, कर्तव्य-परम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये, मनुष्योंको उन्मार्गसे हटाकर सन्मार्गपर लगानेके लिये, प्राणिमात्रका हित करनेके लिये ही करे, अपने लिये न करे (३ । ९,२०) । ऐसा करनेसे उसे अपनी असङ्गताका, अपने स्वरूपका बोध हो जायगा ।

(२) ज्ञानयोग—ज्ञानयोगके द्वारा बन्धनसे छूटनेका ढंग यह है कि मनुष्य सत्-असत्, नित्य-अनित्यके विवेकद्वारा असत् (शरीर आदि) से अपना अलग अनुभव कर ले । ऐसा करनेसे वह मोक्ष पा लेता है, बन्धनसे रहित हो जाता है (१३ । २३,३४) ।

(३) भक्तियोग—भक्तियोगके द्वारा बन्धनसे मुक्त होनेका ढंग यह है कि मनुष्य अपनेसहित संसारमात्रको भगवान्का ही मानकर केवल भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही सब कार्य करे, सब कुछ भगवान्के ही अर्पण करे । ऐसा करनेसे वह सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है (९ । २८) ।

वास्तवमें बन्धन है ही नहीं । यदि वास्तवमें बन्धन होता तो उसका कभी अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'** (२ । १६) और जीव कभी बन्धनसे मुक्त नहीं होता, परंतु वास्तवमें यह बन्धन स्वयंका किया हुआ है, माना हुआ है । अतः जब यह चाहे तब बन्धनको छोड़ सकता है । बन्धनको छोड़नेमें यह स्वतन्त्र है, सबल है, समर्थ है, योग्य है, अधिकारी है । अतः गीता कहती है कि पापी-से-पापी मनुष्य भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है (४ । ३६) और दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभावसे भगवान्का भजन कर सकता है (९ । ३०) । अतः किसी देशका, किसी वेशका, किसी वर्णका, किसी सम्प्रदायका कैसा ही व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) क्यों न हो, वह संसारके बन्धनसे रहित हो सकता है, मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

सभी साधक अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद, द्वैताद्वैत आदि किसी एक धारणाको लेकर पारमार्थिक मार्गपर चलते हैं और उस धारणाके अनुसार ही वे परमात्मतत्त्वका, अपने स्वरूपका अनुभव करते हैं, परंतु उन सबका परिवर्तनशील संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है । सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर उनके लिये संसारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती; क्योंकि वास्तवमें संसारकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं ।

भगवान्ने अपरा (जड) और परा (चेतन)—दोनोंको अपनी प्रकृति बताया है । अपरा प्रकृतिमें निरन्तर परिवर्तन होता है, वह कभी एकरूप नहीं रहती और परा प्रकृति परिवर्तनरहित है । परा प्रकृति परमात्मासे अभिन्न है, अतः वह चाहे भिन्न होकर लीला करे, चाहे अभिन्न रहे, परमात्माके सिवाय उसकी कोई अलग (स्वतन्त्र) सत्ता नहीं होती । लीलाके कारण उसमें द्वैतपना दीखता है, पर वास्तवमें अद्वैत ही रहता है । उसका परमात्मासे नित्ययोग रहता है । तात्पर्य यह है कि प्रेम-रसकी अनुभूतिके लिये परा प्रकृति परमात्मासे अलग होकर लीला करती है, पर वास्तवमें वह अलग नहीं होती । इस विषयमें आचार्योंमें मतभेद है । कई आचार्य अद्वैत मानते हैं, कई द्वैत मानते हैं, कई द्वैताद्वैत मानते हैं, कई विशिष्टाद्वैत मानते हैं, आदि-आदि । उन आचार्योंके मत, मान्यता, सम्प्रदायके अनुसार साधकोंकी साधना चलती है अर्थात् कई साधक द्वैत मानकर चलते हैं और कई साधक अद्वैत आदि मानकर चलते हैं, पर वास्तविक अनुभव होनेपर पहले जैसी मान्यता थी, वैसी नहीं रहती । साधकको उस मान्यतासे विलक्षण तत्त्व मिलता है । जैसे किसीने बद्रीनारायण जानेका विचार किया तो वह बद्रीनारायणके विषयमें (सुने हुएके अनुसार) कई कल्पनाएँ करने लगता है कि वहाँ ऐसा मन्दिर होगा, मन्दिरके पासमें अलकनन्दा बहती होगी, बर्फके पहाड़ होंगे आदि-आदि । पर जब वहाँ जाकर देखता है तो उसे वैसा नहीं मिलता, जैसा कल्पनामें था, प्रत्युत उससे

विलक्षण ही मिलता है। हम किसी महात्माके विषयमें सुनते हैं, उनकी महिमा, उनके गुण सुनते हैं तो उनका ऐसा शरीर है, उनके ऐसे श्वेत बाल हैं आदि कितनी ही बातें सुननेपर और वैसी धारणा कर लेनेपर भी जब प्रत्यक्ष उनसे मिलते हैं, तब वे महात्मा उस धारणासे विलक्षण मिलते हैं। ऐसे ही साधक पहले अपने सम्प्रदायके अनुसार, अपनी धारणाके अनुसार साधन करता है, पर वास्तविकताका अनुभव उस धारणासे विलक्षण होता है। यदि हम वास्तविकताके अनुभवको अपनी पूर्वधारणासे विलक्षण न स्वीकार करें, जैसा साधक-अवस्थामें मानते थे, वैसा ही स्वीकार करें तो साधक और सिद्धका भेद नहीं हो सकता। साधक और सिद्धके भेदसे ही यह सिद्ध होता है कि साधककी धारणाके अनुसार तत्त्व नहीं है। वह तत्त्व वर्णनातीत है, उसका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत अनुभव होता है। अतः उस तत्त्वका वर्णन, विवेचन करते समय जैसी मान्यता रहती है, वैसी मान्यता अनुभव होनेपर नहीं रहती। जैसे कोई साधक विवेक (प्रकृति-पुरुषके भेद)-की प्रधानता रखकर साधन करता है। जब उसे वास्तविक तत्त्वका अनुभव हो जाता है, तब उसके लिये प्रकृतिकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती और विवेक वास्तविक तत्त्वमें परिणत हो जाता है। फिर उसका नाम 'विवेक' नहीं होता, प्रत्युत बोध होता है। वह बोध ही वास्तविक अनुभव है। तात्पर्य यह है कि साधनावस्थामें साधककी जो धारणा रहती है, वह वास्तविक तत्त्वका अनुभव होनेपर नहीं रहती। कारण कि साधकके पास विचार करनेकी जो सामग्री—इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अन्तःकरण आदि हैं, वे सब अपरा प्रकृतिके अंश हैं। अतः ये सब मिलकर भी प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको पहचान नहीं सकते।

जो साधक स्वामि-सेवकभावकी प्रधानता रखकर साधन करता है, उसे जब अनुभव हो जाता है, तब वैसा भाव (अलगपना) नहीं रहता। वह स्वामि-सेवक-भावमें घुल-मिल जाता है। जैसे रामलला वनवासमें पधारे तो माता कौसल्या सुमित्रासे पूछती हैं कि बहन! तुम सच्ची बात बताओ, रामलला वनमें चले गये या यहाँ ही हैं? यदि वे वनमें चले गये तो वे मेरी आँखोंके सामने कैसे दीखते हैं और यदि वे वनमें नहीं गये तो फिर मेरे हृदयमें व्याकुलता क्यों है? इस अवस्थामें माता कौसल्याका रामजीसे नित्ययोग है। यह नित्ययोग कभी स्मृतिरूपसे होता है और कभी स्वरूपसे। 'वियोग हो जायगा'—ऐसा भाव रहता है तो यह 'योगमें वियोग' हुआ और वियोगमें प्रेमास्पद सदा सामने दीखते रहते हैं—यह 'वियोगमें योग' हुआ। इस तरह योगमें वियोग और वियोगमें योग पुष्ट होते रहते हैं। योग और वियोगके रससे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता रहता है। इसमें कई आचार्योंने योगको और कई आचार्योंने वियोगको मुख्यता दी है।

जो अद्वैतमतको माननेवाले हैं, उन्हें जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अखण्ड (शान्त) होता है, परंतु जो द्वैतमतको, प्रेमको माननेवाले हैं, उन्हें जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अनन्त (प्रतिक्षण वर्धमान) होता है। उस प्रेमके आनन्दमें ही योगमें वियोग और वियोगमें योग—यह प्रवाह चलता रहता है, जिसका कभी अन्त नहीं आता।

प्रश्न—पाँच प्रकारकी मुक्ति क्या है?

उत्तर—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य (एकत्व)—ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ हैं। भगवद्धाममें जाकर निवास करना 'सालोक्य' है। भगवद्धाममें एक विशेष आनन्द है। वहाँ सुख-दुःखवाला सुख नहीं है, प्रत्युत सुख-दुःखसे अतीत आनन्द है। सालोक्यसे आगेकी मुक्ति है—'सार्ष्टि'। इस मुक्तिमें भक्तको भगवद्धाममें भगवान्‌के समान ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। अर्थात् जैसा भगवान्‌का ऐश्वर्य है, वैसा ही ऐश्वर्य भक्तको प्राप्त हो जाता है। संसारकी उत्पत्ति करना, संहार करना आदि ऐश्वर्यको छोड़कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये सभी भगवान्‌के समान भक्तको भी प्राप्त हो जाते हैं। जैसे भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन करनेसे, उनका पूजन, ध्यान आदि करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, ऐसे ही उस भक्तके नामका जप आदि करनेसे भी मनुष्यका कल्याण हो जाता

है अर्थात् जो माहात्म्य भगवान्‌के नाम-जप आदिका है, वही माहात्म्य उसके नाम-जप आदिका भी हो जाता है। सार्ष्टिसे आगेकी मुक्ति है—'सामीप्य'। इस मुक्तिमें भक्त भगवद्धाममें रहते हुए भी भगवान्‌के समीप रहता है और भगवान्‌के माँ-बाप, सखा, पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी होकर रहता है। सामीप्यसे भी आगेवाली मुक्ति है—'सारूप्य'। इस मुक्तिमें भक्तका रूप भगवान्‌के समान हो जाता है। भगवान्‌के वक्षःस्थलमें स्थित श्रीवत्स (लक्ष्मीका निवास), भृगुलता (भृगुजीका चरणचिह्न) और कौस्तुभ-मणि—इन तीन चिह्नोंको छोड़कर शेष शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि सभी चिह्न भक्तके भी हो जाते हैं। सारूप्यसे भी आगेकी मुक्ति है—'सायुज्य' अर्थात् एकत्व। इस मुक्तिमें भक्त भगवान्‌से अभिन्न हो जाता है अर्थात् वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं मानता।

उपर्युक्त पाँचों मुक्तियाँ सगुण-साकारको माननेवालोंकी होती हैं। इन पाँचों मुक्तियोंमेंसे 'सायुज्य' (एकत्व) मुक्तिको निर्गुण-निराकारको माननेवाले, अद्वैत-सिद्धान्तमें चलनेवाले भी मान सकते हैं।

प्रेमी भक्त भगवान्‌की सेवाको छोड़कर इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंको भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

कारण कि वह केवल भगवान्‌को सुख देना चाहता है। संसारमें जन्म-मरण होता रहे, संसार-बन्धनसे मुक्ति न हो—इसकी वह परवाह नहीं करता, बन्धनमें अपना दुःख और मुक्तिमें अपना सुख होता है, पर भगवान्‌की सेवामें अपने सुख-दुःखकी परवाह नहीं होती, प्रत्युत केवल भगवान्‌की प्रसन्नताकी ओर दृष्टि रहती है।

बद्ध-अवस्थामें हम ब्रह्म, जीव आदिको विलक्षण रीतिसे देखते हैं और प्रकृतिको भी कार्य-कारणरूपसे विलक्षण रीतिसे देखते हैं, परंतु साधन करते-करते साधकको ब्रह्म, जीव आदिका विलक्षण ही अनुभव होता है। सिद्ध-अवस्थामें तो उससे भी विलक्षण अनुभव होता है। अद्वैत-सिद्धान्तसे जो मोक्ष होता है, उसमें जडतासे सम्बन्ध-विच्छेदकी मुख्यता रहती है और भक्तिसे जो मोक्ष होता है, उसमें चिन्मय-तत्त्वके साथ एकताकी मुख्यता रहती है।

सुदामाकी चिन्ता

(देवीलाल सामरः बी० ए०)

मेरे कन्हैया कृष्ण! तुम-हम कितने समय बाद मिलेंगे। आज उन क्रीडाओंकी मीठी याद फिरसे हो आयी है। वही उन्माद मेरे अन्तस्तलमें उछल रहा है।

तुम्हारा पवित्र स्नेह मुझे तुम्हारी ओर खींच रहा है, पर यह कंकाल-शरीर और दरिद्र वेश-भूषा लेकर तुम्हारे पास कैसे आऊँ? तुम मेरे इस बिगड़े हुए शरीरपर न हँसोगे?

मेरे गोपाल! यदि मैं तुम्हारे द्वारपर पहुँचकर वह शैशवकी उमंगोंका नाच फिर नाचूँ तो क्या तुम भी उसी प्रकार मेरे इस धूलिधूसरित शरीरसे लगकर वही नाच नाचने लगोगे?

मेरी पीडाओंको यदि आश्वासनका पावन उपहार न मिला तो मैं उन्हें सतत अपने जीवनकी अमिट धरोहर बनाये रखूँगा। मेरी आशाओंके शून्य स्रोतोंमें यदि तुम्हारे प्रेमका पावन जल न बहा तो मैं निराश होकर लौट आऊँगा, पर मेरी पोटलीमें बँधे हुए चार चावल यदि लाजवश तुम्हें न दिये गये तो मेरे भगवन्! मैं किस मुँहसे घर लौटूँगा?

कहानी—

अनूठा भिखारी

(श्रीभगवानजी)

एक वृद्ध भिखारी है। उसकी अवस्था लगभग सत्तर वर्षकी होगी। उसे आँखोंसे कम दीखता है। उसके बाल पक गये हैं, परंतु कानोंने अभी जवाब नहीं दिया है, कंधेपर एक झोली है और कपड़े फटे, चिथड़े और मैले हैं। वह लाठीके सहारे धीरे-धीरे चलता है।

बचपन बड़ा सुहावना होता है। बचपनमें वह खेलता था, पतंग उड़ाता था और हँसता था। बचपन आया और डालपर बैठी चिड़ियाकी भाँति उड़ गया। उसे इतना ही स्मरण है।

अपनी जोशसे भरपूर एवं अनेक इच्छाओंसे भरी जवानी उसने संसारके समझनेमें, उसके पीछे चलनेमें और दौड़नेमें बिता दी। अब उसे अपनी जवानीकी एक धुँधली-सी स्मृति है।

उसने सारा समय खो दिया, अब बुढ़ापा आया। काम करनेके उत्तम दिन एक-एक करके विदा हो गये। अब जब स्वयं उसके विदा होनेकी बारी आयी तब उसकी मोह-निद्रा टूटी। अच्छा, ***'गयी सो गयी, अब राख रही को'***—अब वह गिने-गिनाये कुछ वर्षोंको—इस अन्तिम समयको व्यर्थ न खोयेगा। अब वह केवल प्रभुके गुण गायेगा और जहाँ-कहीं दो रोटियाँ मिलीं, उन्हें खाकर मस्त पड़ा रहेगा।

× × × ×

एक धनवान्‌की दिव्य अट्टालिकाके समीपकी सड़कपर भिखारी खड़ा होकर कह रहा है—'बाबा! भोजन दे दो! बूढ़ा भूखा है दाता!'

'बूढ़े! जाओ, आगे बढ़ो। घरके समीप शोर न करो।'—धनिकके दरवानने उसे डाँटकर कहा। भिखारी आगे बढ़ा।

एक गृहस्थका घर आया। भिखारी चिल्लाया—'बूढ़ा भूखा है। दाता! बूढ़ेको भोजन दे दो।' घरके अंदरसे आवाज आयी—'ठहरो, भिखारी! ठहरो!' भिखारी रुक गया।

थोड़ी देर बाद हाथोंमें एक थाल लिये एक स्त्री आयी। थालमें पत्तलपर भाँति-भाँतिके पकवान सजे थे। 'लो, बाबा! लो।'—स्त्रीने कहा।

भिखारी उसकी ओर आया। स्त्री उसके हाथोंपर पत्तल रखने लगी। भिखारी चिल्लाया—'ठहरो बेटी! ठहरो। हम ऐसी भीख नहीं लेते।'

स्त्री बोली—'बाबा! पत्तलमें पकवान है, पकवान! खाकर तृप्त हो जाओगे।'

भिखारी जाने लगा। मानो उसने सुना ही नहीं! स्त्रीने जोरसे पुकारा—'भिखारी! पकवान है, पकवान! इसे लेते जाओ।'

भिखारी—'बेटी! हम ऐसी भिक्षा नहीं लेते। तुम मेरे हाथोंपर पत्तल रखना चाहती हो। मैं किसीके हाथोंके नीचे अपना हाथ नहीं रखता। चाहे मर ही क्यों न जाऊँ। देखो—

तुलसी कर पर कर धरो कर तर कर न धरो।
जा दिन कर तर कर धरो वा दिन मरन करो॥

स्त्री—'लो बाबा! मैं इसे भूमिपर रखे देती हूँ। लो, अब तो लोगे!'

भिखारी—'हाँ बेटी! लूँगा। परंतु।'

स्त्री—'परंतु क्या? बाबा!'

भिखारी—'बेटी! यह पकवान मेरे कामका नहीं है।'

स्त्री—'क्यों बाबा? हम तो हिंदू हैं, ब्राह्मण हैं।'

भिखारी—'बेटी! जाने दो। भिखारी भूखा है। देर हो रही है।'

स्त्री—'तो लो न बाबा! मैं तो तुम्हारे लिये ही पत्तल लिये खड़ी हूँ।'

भिखारी—'जाओ बेटी! ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे!

तुम्हारा सुहाग अचल रहे। बाबाको छुट्टी दो।' भिखारी आगे बढ़ा। उसने भीख नहीं ली।

स्त्री किसी याचकको द्वारसे विमुख नहीं करना चाहती थी। आज एक वृद्ध विमुख हो रहा है। सो भी न जाने क्यों? उसने तो कोई अपराध भी नहीं किया। स्त्रीकी दयाभरी आँखें डबडबा आयीं।

स्त्रीने फिरसे पुकारा—'बाबा! ओ भिखारी बाबा! बेटीकी एक बात तो सुनते जाओ।'

स्त्रीके प्रेमभरे शब्दोंने और उसकी करुणायुक्त आवाजने भिखारीको आगे बढ़नेसे रोका। वह लौटा और फिर उसी द्वारपर आकर खड़ा हो गया।

स्त्री—'बाबा! मेरी भिक्षा क्यों नहीं लेते? यह तो श्रद्धासे दे रही हूँ! कुछ कम हो तो और लाऊँ बाबा!'

भिखारी—'नहीं बेटी! कम नहीं है, परंतु मुझे पकवान नहीं चाहिये, यह तो इस स्थूल शरीरका भोजन है। मैं यह न लूँगा बेटी!'

स्त्री—'तो फिर क्या लाऊँ बाबा?'

भिखारी—'बेटी! जा, ईश्वर कल्याण करे तेरा! मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

स्त्री—'नहीं बाबा! ऐसा नहीं होगा। यदि तुम विमुख लौटोगे तो मैं भी भोजन न करूँगी।'

वृद्धने सोचा—अहा! पुरुषोंसे स्त्रियोंमें कितनी अधिक करुणा होती है। देवियाँ दयालु होती हैं। त्याग उनका भूषण है। देखो न, कहती है—'यदि तुम विमुख लौटोगे तो मैं भी भोजन न करूँगी!' धन्य है देवी! तुम्हारा त्याग! भला, इसे मुझसे क्या प्रयोजन? फिर भी मुझसे कितना स्नेह करती है। वृद्धको कोई उपाय नहीं सूझा। वह विवश था। जिस बातको वह छिपाना चाहता था, वह उसे बतानी पड़ी।

भिखारी बोला—'बेटी! मुझे ऐसा भोजन चाहिये, जिसमें हाथ न लगाना पड़े। मुझे आत्माका भोजन चाहिये बेटी! जिससे बाबा ईश्वरको देख सके।'

स्त्रीके पास इसका कोई उत्तर न था। वह अवाक् रह गयी। उसे क्या पता था कि भिखारी ऐसी वस्तु माँगेगा जो वह न दे सके!

भिखारी आगे बढ़ा। कई द्वार देखे। बड़े-बड़े सेठ-साहूकारोंके द्वारपर गया। कोई सत्तू देता था, कोई आगेका रास्ता बताता था और कोई आलसी बनाकर झिड़कियाँ सुनाता था।

× × × ×

संध्या निकट आ रही है। बूढ़ा भिखारी द्वार-द्वार घूमते-घूमते थक गया है। उसे अभीतक भीख नहीं मिली। फिर आशाके सहारे वह आगे बढ़ता जाता था।

भिखारी एक झोंपड़ेके पास आया। उसने आवाज लगायी—'भीख मिले दाता! बूढ़ा दिनभरसे भूखा है।'

उसकी आवाज सुनते ही एक स्त्री झोंपड़ेसे बाहर आयी। स्त्रीके वस्त्र मैले थे। साड़ीमें कई पैबंद लगे थे। हाथोंमें तीन-चार मैली-मैली चूड़ियाँ थीं। हाथमें आलमुनियमका एक पुराना टूटा हुआ मैला कटोरा था। उसमें दिनका ठंडा भात था।

'लो बाबा! भीख ले लो।'—स्त्रीने कहा!

भिखारी—'क्या है बेटी?'

स्त्री—'भीख है बाबा!'

भिखारी—'लाओ बेटी!'

स्त्रीने वृद्धके आगे कटोरा रख दिया और बोली—'इसीमें खा लो बाबा बैठकर।'

भिखारी—'क्या लायी हो बेटी?'

स्त्री—'बाबा! मैं क्या लाती? ठंडे भात तो हैं गरीबके घरके।'

'मैं इसे नहीं लूँगा बेटी!'—भिखारी बोला।

'क्यों बाबा? क्या गरीबकी भीख न लोगे?'—स्त्रीने कहा।

भिखारी—'नहीं बेटी! इसलिये नहीं कि तुम गरीब हो। निर्धनको कोई चाहे धन न दे, परंतु उससे प्रेमके शब्दोंमें बोल ले। इतनेमें ही निर्धनको स्वर्गका-सा सुख मिल जाता है।' भिखारीके प्रेमभरे उत्तरने स्त्रीके हृदयमें सहानुभूति उत्पन्न कर दी।

स्त्री बोली—'बाबा! तुम तो बड़े अच्छे हो। कोई-कोई तो हमारी भीख भी नहीं लेता और कोई तो

गालियाँ सुनाकर चला जाता है। अच्छा, बैठ जाओ बाबा ! भात ठंडे हैं तो मैं अभी गरम रसोई बना देती हूँ।'

भिखारी—'नहीं बेटी ! मेरे लिये कष्ट न करो।'

स्त्री—'इसमें कष्ट क्या है बाबा ? रसोई तो बनानी ही पड़ेगी।'

भिखारी—'बेटी ! मुझे भूख नहीं है।'

स्त्री—'बाबा ! झूठ बोलते हो वृद्ध होकर ! सो भी अपनी बेटीसे ! ऐसा न कहो बाबा ! अभी तो तुम भोजन माँगते थे।'

भिखारी—(हँसकर) 'ठीक है बेटी ! ठीक है। तुम बड़ी सयानी हो। बूढ़ेको तुमने जवाबमें छका दिया। मैं बहुत प्रसन्न हूँ बेटी ! परंतु मुझे शरीरका भोजन नहीं चाहिये।'

स्त्री—'बाबा ! तुम बड़े नटखट हो ! बच्चोंकी-सी बातें करते हो ! कभी भोजन माँगते हो, कभी कहते हो कि भूख नहीं है और कभी और कुछ ! हाँ, बातोंसे पेट भर देते हो। बैठो, देर नहीं है रसोईमें।'

भिखारी—'बेटी ! यह भोजन खाते-खाते तो मेरी आयु बीत चली। काले बाल सफेद हो गये। दाँत टूट गये, पर फिर भी जीभकी स्वाद लेनेकी आदत नहीं छूटी। प्रतिदिन भोजन करनेपर भी अवस्थाके अनुसार शक्ति क्षीण होती जाती है। बेटी ! अब मैं आत्माका भोजन चाहता हूँ, जिससे अन्तिम समयमें भी तो प्रभुका दर्शन कर सकूँ।'

उस स्त्रीकी भाँति इस बेचारीके पास भी इसका कोई उत्तर न था। वृद्ध आगे बढ़ा। स्त्रीके सत्कारसे वह प्रसन्न था।

× × × ×

अँधेरा हो गया है। भिखारी भलीभाँति थक चुका है। उसने सारा नगर छान डाला, पर उसे कहीं भीख न मिली। जिसके द्वारपर जाता, वही व्याकुल हो जाता। कोई उसे भीख नहीं दे पाता। भिखारी भी बड़ा ही अनूठा है। वह ऐसी अनोखी वस्तु माँगता है, जो किसीके भी पास न हो।

भिखारी थककर नदीके किनारे एक वृक्षके नीचे बैठ गया। उसे पछतावा हो रहा है तथा अपने पहलेके सारे कृत्य एक-एक करके याद आ रहे हैं और आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं। उसे रोते-रोते घंटों बीत गये, सिसकियाँ बँध गयीं। वह सच्ची रुलाई रो रहा है। रोते-रोते वह अचेत हो गया। वहाँ कोई उसका उपचार करनेवाला न था। अन्तमें उस थके भिखारीको दयालु निद्रादेवीने अपना लिया।

भिखारी सो रहा है। इस समय वह स्वप्न देख रहा है। उसे दिनभरका दृश्य फिरसे स्मरण हो आया। वह धनिककी अट्टालिकाके समीप खड़ा है। दरवानने उसे भगा दिया। एक दयामयी स्त्री पकवान दे रही थी। दूसरी स्त्रीके कटोरेका ठंडा भात प्रेमरूपी अमृतसे सना था, परंतु उसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। किसीने भी उसकी माँगी हुई भीख नहीं दी। अब वह पेड़के नीचे बैठा रो रहा है। भिखारी इतना रोया, इतना रोया कि गङ्गामें बाढ़ आ गयी। गङ्गा उमड़-घुमड़ करती ऊपर उठीं और उसे अपनी लहरोंसे बहा ले गयीं। थोड़ी देर बाद गङ्गाने अपने हिलोरोंसे उसे फिर वहीं पेड़के तले बैठा दिया। मानो गङ्गा उसका पाप दूर करनेको उसे ले गयी थीं।

भिखारीकी नींद नहीं टूटी है। अभी वह स्वप्न देख रहा है। उसे रोते देखकर एक छोटा-सा सात वर्षका बालक आया। बालक बड़ा सुन्दर और कमल-सा कोमल था। बालक भिखारीके सामने खड़ा होकर हँसने लगा। कुछ क्षणके बाद वह भिखारीसे बोला—'क्यों लोते हो बाबा ! मिठाई लोगे ? लो, यह लड्डू दूँ ! तुम्हें किसने माला है बाबा ? बताओ, मैं उसे अभी अपने डंडेसे मालूँगा !'

बालककी मीठी बातोंसे भिखारीको हँसी आयी। क्षणभरके लिये वह अपना सारा दुःख भूल गया। भिखारीने बालकको पकड़ना चाहा। बालक दूर भाग गया और वह उसे न पकड़ सका। भिखारी बोला—'अच्छा, लड्डू दो लल्ला ! क्या बाबाको अब लड्डू न दोगे?'

बालक—'तुम मुझे पकल लोगे ! मैं नहीं आता।'

भिखारी—'अच्छा, आओ। मैं नहीं पकड़ूँगा। लो, आँखें बंद करता हूँ।'

भिखारी आँखें बंद करता है। बालक उसके समीप जाता है। समीप जाकर बालक बोला—'लो लड्डू बाबा! एक! दो!! तीन!!!'

भिखारी उसे फिर पकड़ना चाहता है। बालक दूर हट जाता है। ऐसे ही तीन बार भिखारीने उसे न पकड़नेका वचन दिया, परंतु बालकके आते ही वह हर बार उसे पकड़नेका प्रयत्न करता था। भिखारी जब उसे पकड़ना चाहता था, तब बालक पीछेकी ओर भाग जाता था।

चौथी बार फिर भिखारी बोला—'लल्ला! लड्डू लाओ! क्या रूठ गये बाबासे?'

अबकी बार बालक बोला—'हाँ, लूठ गया।'

भिखारी—'क्यों?'

बालक—'इसलिये कि तुम बाल-बाल झूठ बोलते हो बाबा! लाम! लाम!! इतने बले होकल भी झूठ बोलते हो बाबा!'

भिखारीको अपने ऊपर बड़ी घृणा आयी। उसने कहा—'अच्छा, मुझे भोजन कराओगे लल्ला?'

बालक—'लाम! लाम! फिल झूठ बोलते हो बाबा!'

बालक थपड़ियाँ पीटकर हँस पड़ा। भिखारीको बालककी हँसीमें बड़ा आनन्द आ रहा था, परंतु बालकके मीठे तिरस्कारका भिखारीपर बड़ा प्रभाव पड़ रहा था।

भिखारी बोला—'कैसे लल्ला?'

बालक—'बाबा! तुम्हीं न आज हमाले घल गये थे! अम्मा तुम्हें कटोलेमें भात देती थी। तुमने नहीं लिया। क्या भूल गये बाबा?'

भिखारी—'उस समय तुम कहाँ थे लल्ला? तुम तो वहाँ नहीं थे।'

बालक हँसा और बोला—'वाह! मैं वहीं तो था बाबा! मैं तो वहीं लहता हूँ। ओहो! तुमने मुझे देखा भी नहीं! बालक हर्षसे कूदने लगा।

भिखारी—'अच्छा लल्ला! तो क्या मुझे आत्माका भोजन कराओगे?'

बालक—'हाँ बाबा!'

भिखारी—'कराओ तब! बोलो, कैसे प्रभुके दर्शन होंगे?'

बालक फिर हँसा और बोला—'बाबा! क, ख गसे पढ़ाई होती है। 'क'के बाद 'ख' आता है औल 'ख'के बाद 'ग' बाबा! 'क'से कलो, तब 'ख'से खाओ, फिर 'ग'से गति पाओ बाबा

बालककी चतुरताभरी बातोंसे भिखारीको बड़ा कौतूहल हुआ। उसने फिर पूछा—'लल्ला! समझाकर बतला दो बूढ़े बाबाको कि भगवान् कहाँ रहते हैं लल्ला?'

बालक—'बाबा! वह तो सदा गलीबोंकी कुटियामें लहता है। उनकी सेवा कलता है।'

भिखारी—'उससे कैसे भेंट होगी लल्ला!'

बालक—'बाबा! तुम भी गलीब बन जाओ। तब आप ही वह तुम्हाले घल दौला आवेगा। नहीं तो गलीबोंकी सेवा कलो बाबा! वहाँ वह भी आयेगा। बस, भेंट हो जायगी बाबा!'.....

भिखारी बालकको फिर पकड़ना चाहता है। बालक भाग जाता है। भिखारी पीछे-पीछे दौड़ता है। बालक भिखारीके देखते-देखते ही समीपके एक झोंपड़ेमें छिप जाता है। इसी अवसरपर भिखारीका स्वप्न टूटता है। वह पेड़के नीचे बैठा है। आँखोंसे प्रेमाश्रु बह रहे हैं

साधुताके ये तीन लक्षण हैं—(१) संसारका ऊँच-नीच तुम्हारे हृदयमें प्रवेश न करने पाये। मिट्टीकी भाँति सोने-चाँदीको भी त्याग देनेकी क्षमता तुममें होनी चाहिये। (२) लोकापवादपर दृष्टि मत दो, न लोकप्रशंसासे फूलो और न लोकनिन्दासे अप्रसन्न हो। (३) तुम्हारे हृदयमें लौकिक विषयकी कामना निःशेष हो जाय। दूसरोंको विषय-भोग और स्वादिष्ट खान-पानमें जैसा आनन्द मिलता है, वैसा ही आनन्द तुम्हें उन भोगोंके त्यागमें मिले।

भक्त-गाथा—

श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज

(स्वामीजी श्रीजयरामदेवजी)

भारतवर्षमें अनादिकालसे ऐसे प्रतापी महापुरुष होते आये हैं कि जिनके तपोबल एवं भक्तिबलसे अनन्त अधमोंका सहजमें ही कल्याण होता रहा है। ऐसे ही महापुरुषोंमें एक प्रसिद्ध महात्मा श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज हुए हैं, जिनके बनाये गीत प्रेमी भक्तोंके कण्ठहार हो रहे हैं। उन गीतोंमें अमर आनन्दानुभव मिश्रित है।

आपका जन्म वि० सं० १८१३में हुसंगाबाद जिलेमें नर्मदा-तटपर एक ब्राह्मणके गृहमें हुआ था। आपका मन बाल्यकालमें ही ज्ञान-वैराग्यके रंगमें रँग गया। घरके धंधोंमें आपका मन नहीं लगा। पिताने एक सुन्दरी विप्रकन्यासे आपका सम्बन्ध करनेका निश्चय किया; परंतु आपने विचार किया कि विवाह हो जानेपर निश्चय ही मायाके बन्धनमें बँध जाना पड़ेगा। मेरे हृदयमें आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहकर तपस्या करनेका संकल्प दृढ़ हो चुका है। अब यदि मैं विवाह करके फिर भागूँगा तो पत्नीको त्यागकर तपस्याके लिये वनमें जाना अपराध होगा। अतः पहले ही भाग जाना उत्तम है। ऐसा निश्चयकर आप अर्धरात्रिमें भाग निकले। साधु-वेष बनाकर भिक्षावृत्ति धारण कर हरद्वार पहुँचे। वहाँसे हिमालयके अनेक स्थलोंपर विचरते हुए बदरिकाश्रममें आये। बदरीनारायणके निकट बर्फीले पहाड़पर रहते हुए आप तप करने लगे। तपस्याके प्रतापसे आपको सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। साक्षात् श्रीबदरीनारायण भगवान्ने आपपर कृपा की। वे अन्य रूपोंमें दर्शन दे-देकर भोजनादि पहुँचाते रहे। अपने तप एवं भगवत्कृपासे आपको ऐसी शक्ति प्राप्त हुई कि भयंकर शीतऋतुमें भी आप बर्फपर पड़े रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्षोंतक उत्तराखण्डमें रहे। बीच-बीचमें आपको अनेक देवताओंके दर्शन हुए।

एक बार भगवान् शंकरने आपको आज्ञा दी कि 'अयोध्या जाओ और श्रीराममन्त्र ग्रहण करो। तब भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होगा।' इस आज्ञाको शिरोधार्य कर आप श्रीअयोध्या आये और श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें दीक्षित होकर श्रीसरयू-तटपर एकान्तमें श्रीराम-मन्त्रका अनुष्ठान करने लगे।

श्रीराम-मन्त्रका अनुष्ठान करते जब कई वर्ष बीत गये, तब एक दिन आपके हृदयमें प्रभुके विरहमें विशेष व्याकुलताका उदय हुआ। उसी विरह-दशामें आपको दिव्य लीलाओंके दर्शन हुए। उसी दशामें आपको सखी-भावना जाग्रत् हुई। आपको अपने सखी-रूपसे श्रीसाकेतमें नित्य-निकुञ्ज-मन्दिर-मध्य दिव्य दम्पति श्रीसीतारामजीकी सेवामें अपनेको उपस्थित करनेकी लालसा जाग उठी। प्रभुके विरहमें आपकी वाणीसे गीत बनने लगे। एक दिव्य गीतमें प्रियतमसे मिलनेकी प्रार्थना है। अवधी भाषामें वह गीत इस प्रकार है—

पिया प्यारे दरस दिखलाय जाउ हो।
अवध छैल मनहरन लाड़िले,
छिनभरि नयन मिलाय जाउ हो॥
बिरह बिकल निसि दिन न परत कल,
रघुनंदन अब आय जाउ हो।
'मौन' मरन चाहत दरसन बिन
छबि अमृत बरषाय जाउ हो॥

—इस पदको अनुरागरञ्जित हृदयसे जब आपने गाया तो उसी समय उनके सामने सहसा पूर्ण ब्रह्म श्रीकौसल्यानन्दन भगवान् प्रकट हो गये। प्रभुके दिव्य दर्शन कर आपने दण्डवत् प्रणामके पश्चात् प्रार्थना की—

प्रियतमके दरसन किये रही न अब कछु चाह।
चाह यहै करियो सदा, प्रीति रीति निर्वाह॥

प्रभुने बारंबार वरदान माँगनेके लिये कहा, किंतु आपने अन्य कुछ न माँगकर यही माँगा कि 'सखीरूपमें मैं सर्वदा आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ।' 'एवमस्तु' कहकर शृङ्गाररसमयी उपासनाका वरदान देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

उस समय आप प्रेमोन्मत्त-दशामें रहने लगे। आप मानसी भावनामें दो-दो दिन मूर्च्छित पड़े रहते थे। उस दशामें आपको लँगोटी-अँचला पहननेतककी सुधि नहीं रहती थी। तबसे आपने वस्त्र पहनना ही छोड़ दिया। दिगम्बर हो गये। सनकादिकोंके समान जीवन्मुक्त हो नंग-धड़ंग विचरण करने लगे। साक्षात्कार होनेके पश्चात् ही आपने मौन धारण कर लिया। हाँ, कभी कुछ लिख देते थे अथवा कभी कोई प्रेम-तरंग आयी तो एकान्तमें भगवान्‌के प्रेममय गीत अवश्य गा उठते थे। वैसे कुछ नहीं बोलते थे। साक्षात्कार होनेके पश्चात् आपको पुनः मिलनके लिये विकलता होने लगी। उस दशामें आप यह गीत गाया करते थे—

सखी री ! मन ले गये अवधकिशोर ॥
मृदु मुसकानि मदनमनमोहनि, अवलोकनि चितचोर।
चितवत मनहुँ मदन सर मारत, कमल दृगनकी कोर ॥
निरखि अनूप रूप मन बँधि गयो, परम प्रेमकी डोर।
बिबस भई तन मन सुध बिसरी, चितय रही वहि ओर ॥
प्रमुदित चित अनुराग पुलकि तन, ज्यों शशि ओर चकोर।
तृप्ति न होत मधुर छबि निरखत, पियत सुधा दृग बोर ॥
लोक लाज मरजाद कानिकुल, निकसि गई तृन तोर।
निसिदिन 'मौन' मुदित मन बिचरत, अवध नगरकी खोर ॥

एक बार आप श्रीजनकपुर दर्शनार्थ गये। वहाँपर श्रीराघवेन्द्रसरकारने आपको दूल्हारूपसे दर्शन दिया। उस समय आपको यह गीत स्फुरित हुआ—

जनक नगर चलि देखो मेरी आली
दुलहा अति प्यारो री, सखी ! बनरा अति प्यारो री ॥
सुचि सिंगार भूषन मणि झलकैं
कुंडल श्रवन लसत अलि अलकैं।
तिलक सुभाल बिसाल मौर मणि
मदन सँवारो री ॥
बसन सुरंग स्याम तन सोभित,
कर-कंकन त्रिभुवन मन मोहित।
मनहुँ मोहनी जन्त्र मन्त्र
मनसिज पढ़ि डारो री ॥
भृकुटि कुटिल पंकज दृग पलकैं
मनहुँ मनोज धरे सर भलकैं।
मृदु मुसुकनि मनहरण हृदय
चितवनि सर मारो री ॥
बदन मयंक मदन छबि छलकैं,
रूप बिलोकि नारि नर ललकैं।
'मौन' मुदित मन रसिक रमन
अवधेश दुलारो री ॥

कहा जाता है—योगबलसे आपको दिव्य दृष्टि भी प्राप्त हो गयी थी। इस सम्बन्धमें आपकी अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिन्हें भक्तोंने अनुभव किया और जिनके विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्राप्त हुए।

श्रीमौनीजी प्रायः चार तीर्थोंमें विशेष रहा करते थे—अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट तथा कभी-कभी वृन्दावन। कभी कहीं, कभी कहीं—इसी प्रकार चारों स्थानोंमें आया-जाया करते थे।

श्रीमौनीजीकी आयु अधिक थी, किंतु आप एक-से ही सदा दीखते थे। वृद्ध-से-वृद्ध पुरुष यही कहते मिलते थे कि हमने बचपनसे लेकर अपनी सारी आयुभर इन्हें सदा ऐसा ही देखा है। इसलिये आपमें सब श्रद्धा करते थे। सौ वर्षसे बहुत अधिक आयु होनेपर भी आप इतनी तेजीसे चलते थे कि साथ चलनेवाले नौजवानोंको आपके साथ दौड़ना पड़ता था। आपकी स्वाभाविक चाल देखकर सबको महान् आश्चर्य हुआ करता था। आपमें सब सिद्धियाँ थीं, परंतु भक्ति-रसमें बाधक समझकर आप किसी सिद्धिका उपयोग नहीं करते थे।

एक बार आप अयोध्या आये। वहाँपर एक विचित्र घटना हुई थी। इस चरित्रको अयोध्याके पुराने महात्मा बताया करते हैं, जिन्होंने इसे आँखोंसे देखा है। यह विक्रमी संवत् १९३५की बात है—

श्रीमौनीजी अयोध्याके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकनकभवनमें

आये। वहाँपर प्रभु श्रीसीतारामजीका दर्शनकर आपको इतना आनन्द उमड़ा कि आपका मन हाथसे बे-हाथ हो गया। प्रेमोन्मत्त-दशामें आपने प्रभुकी दिव्य झाँकी देखी। श्रीदशरथराजकुमारने अपनी तिरछी चितवनका बाण चलाया। आप उस समय ऐसे विह्वल हुए कि मौन त्यागकर उच्चस्वरसे पद बना-बनाकर गाने लगे। पदगान करते-करते ऐसा समा बँध गया कि आप नाचने भी लगे। उस समय सहसा आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उस दिव्य फूलोंकी वर्षाको देखकर उपस्थित दर्शकगण आश्चर्यचकित हो गये। जिस पदके गानेपर पुष्पवर्षा हुई थी, वह पद यह है—

मारे मारे कमल दृग बान हमारे हिय रामा लगे ॥
अरुनारे प्यारे अनियारे,
भृकुटी विकट कमान, चितय चित प्यारे ठगे।
कुसुमित कंज मंजु मुख मृदुलित,
मन मोहन मुसकान, सुधारस प्यारे पगे ॥
बिबस भई रस-रूपदिवानी,
टूट गई कुलकान, कर्मअपछारे भगे।
'मौन' मुदित अब अवध-छैलपर,
वारौं तन मन प्रान, रसिक मम सजन सगे ॥ मारे० ॥

श्रीमौनीजी महाराजका जीवनचरित्र अपार है। यहाँपर कुछ थोड़ा-सा संकेतमात्र संक्षिप्तरूपमें लिखा गया है। आपके बनाये कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। वे सभी ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। आपने अपने भक्तोंको आदेश दिया था कि हमारे ग्रन्थ न छपाये जायँ। इसीलिये ये प्रकाशमें नहीं आये। आपके ग्रन्थोंमें 'मिथिलाविहार' तथा 'अवधविहार' एवं 'प्रेमरससार' आदि प्रसिद्ध हैं। चर्या तथा पदोंमें त्याग एवं अनुरागका विलक्षण सम्मिश्रण हुआ है। आपका परमपद-गमन वि० सं० १९७६में हुआ, पर आप अपने ललित गीतोंद्वारा सदा अनुरागी जनोंमें विद्यमान हैं। आपके अवधी भाषाके गीत अयोध्याके मन्दिरोंमें बड़े चावसे गाये जाते हैं।

भगवत्प्रार्थना

यह नमस्कार भक्ति-श्रद्धामय करना अंगीकार हरे!
इस विपुल विश्वमें भक्तोंके हो तुमही स्नेहाधार हरे!!
मन-रंग-मंचपर नाच रही ज्यों-ज्यों तव छवि सुकुमार हरे!
त्यों ही त्यों झंकृत होते है इस हत्तंत्रीके तार हरे!!
कामादिक मनोविकार नहीं मनपर करते अधिकार हरे!
क्या होगी उसकी हार भला जिसके हो तुम गलहार हरे!!
जब मेरे हृदय-नभस्तलमें तुम बनते घन साकार हरे!
तब नीरस जीवन-वनमें भी होता रसका संचार हरे!!
इस छलनामय भवसागरमें जब छूट जाय पतवार हरे!
टूटी फूटी नैया भी तब पहुँचाते तुमही पार हरे!!
निज लीला-क्षेत्र बनाया था जिसको तुमने बहु बार हरे!
उस भारतकी दुरवस्थापर करते क्यों नहीं विचार हरे!!
पृथ्वी है विकल व्यथासे अब कब लोगे तुम अवतार हरे!
क्या नहीं, धर्म-रक्षण अब तेरा जन्मसिद्ध अधिकार हरे!!
इस पापसिन्धुमें पड़ा हुआ है भारत अब मँझधार हरे!
क्या नहीं आप पहुँचाओगे अब भी इसको उस पार हरे!!

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

[इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४४से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४५ तक रही है।]

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पूर्ववत् पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २४,२३,४४,००० (चौबीस करोड़ तेईस लाख चौवालीस हजार)।

(ख) नाम-संख्या ३,८७,७४,८४,००० (तीन अरब सतासी करोड़ चौहत्तर लाख चौरासी हजार)।

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंधियारखोर, अम्बाला, अम्बाला कैंट, अम्बाला सिटी, अकलैरा, अकाझिरी, अकोटफैल, अकोढ़ा, अक्कलकोट, अगुवानी, अघोड़ा, अजबपुरा, अजनसोंडा, अजमेर, अटेर, अणुशक्ति, अतर्रा, अधोया, अनधौरा, अनन्तपुर, अनसारी, अनुग्रहनगर, अपाण्डा, अमरपुर, अमरावतीनगर, अमलाई, अमलाई कालरी, अमलोह, अमलीपदर, अमृतपुर, अयोध्या, अरई, अरड़का, अरनियाचौहान, अरेराज, अर्वकनगर, अलीगढ़, अल्मोड़ा, अल्लागंज, अशोकनगर, असगना, असजनर, असदपुर, अहमदाबाद, ,अहिनौरा, अहिरौरा, अहेरी, आकिन, आकोट, आगरा, आगलपुर, आगानगर, आदिलाबाद, आबू, आमल्दा, आमस, आरा कोयलरी, आसननगर, आसरानगर, आसलपुर, ओड़ेकेरा, ओसकना, औरंगाबाद, इंगोहटा, इन्दौर, इंद्रगढ़-हाड़ौती, इंद्राना, इगलास, इमिलिया, इरारौली, इलाहाबाद, इस्माइलगंज, ईनरूबाबाजार, ईश्वरपुरसांई, उज्जैन, उजोधा, उटिला, उ़दनाबाद, उदयपुर, उदलियास, उन्नाव, उपरहट्टी, उमरेड, उरई, उरतुम, उरूका, उल्हासनगर, उसरी, एटा, एडौरा, कंगटी, कंजर, कंवाली, कजार्डी, कटनी, कटिहार, कनकपुर, कनासिया, कनेछनकलाँ, कन्नौज, कन्होली, कपरपुरा, कपुरीसर, कमता, करंगामाल, करनमेया करनाल, करमावा, करवाड़, करही, कराहल, करोदा, करौली, कलकत्ता, कलंब, कल्याणपुर, कल्याणबीघा, कवलपुरा-मठिया, कसरौर, कसहा (पूर्व), कसही, काँटाफोड़, कांटाबाजी, कांटिला, काँधला, कागजनगर; काचरेडा, काटोल, काठमाण्डू, कादरगंज, कानपुर, कानपुर-शहर, कारंजालाड, कालन्द्री, कालीगाँव (करगेत), कालीमाटी, कालेनरपतनगर, काशीपुर, किताड़ीह, किराला, कीरीबरू, कुंडवाचैनपुर, कुनौनी, कुवाँरिया, कुशमरा (कोच), कुशंहा, कुशाहा, केकड़ी, केरपानी, केवलारी, केशरीचन्द्र, कोकलकचक, कोचीन, कोटद्वारा, कोटरी, कोटपूतली, कोटा, कोठ, कोठी, कोनाग, कोमाखान, कोमाग, कोरगलाव, कोरबा, कोलाहलपुर, कोल्हापुर, खण्डवा, खड़ंसा, खजुरीरुण्डा, खटनोला, खटीमा, खरगपुरवजि, खरगोन, खरदौनकलाँ, खरोसा, खलारी, खलीलाबाद, खानपुर-येवान, खारा अब्रामा, खाराघोड़ा, खालवा, खिरनी, खुरदा, खुरसरा, खुर्जा, खेगाबड़ा-सैयदपुर, खेतड़ी बाजार, खेतराजपुर, खेरोट, खैरमण्डी, खोड़, खोरीडीह, गंगापुर, गच्छीपुरा, गढ़पुरा, गढ़मोरा, गढ़ा, गणेशगंज, गणेशनगर, गनेड़ी, गमछ, गरोड, गाजियाबाद, गार्डनरीच, गिरिजास्थान, गुंडरदेती, गुजरा, गुट्टी, गुढ़ा, गुड़गाँव, गुड़ाभगवानदास, गुराड़िया, गुरुगाम, गुलखण्ड, गुलबर्गा, गुलवाररोठार,

गेनमेर, गेवरा प्रोजेक्ट, गोकाक, गोड़हिया नं० १, गोनौन, गोरखप्रासी, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुर, ग्वाड़, ग्वालियर, घनसावंगी, घरैहली, घाटासेर, घैणी, घोंघौर, घोरमारा, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदखुरी, चंदा, चंदेरी, चंद्रपुर, चंद्रहटी, चम्पावत, चक, चकना, चकवड़, चनवथ, चमनगंज, चरौदा, चहुटा, चांदपुरा, चाकुलिया, चानो, चापाखोवा, चिंचोली, चितभवन, चित्तौड़गढ़, चियाँकी, चीचगढ़, चुकलतीर्थ, चेलावास, चैनपुर, चोरया, चौबयाना-तालबेहट, चौबेके परसिया, छापड़ा, छिंदवाड़ा, छिछली, छेरकापुर, छोटी-कसरावद, जंगलोट, जगतपुर, जगदलपुर, जनापुर, जबलपुर, जमुआँ, जमुनियाँ, जयपुर, जलगाँव, जरौली, जलालाबाद, जसवन्तनगर, जहाँगीराबाद, जाखल, जाजोता, जापला, जाबरा, जालन्धरशहर, जालना, जालोर, जावरमाइन्स, जुक्कल, जैतपुरा, जोगतराई, जोगियारा, जोधपुर, जोबनी, जोरावरडीह, जौरा, ज्यूनियाँ, ज्योलीकोट, झड़गाँव, झाँसड़ी, झाँसी, झुंझनू, झुमरी-तिलैया, टाकलीकलाँ, टाटानगर, टिकारी, टिब्बाटिम्परियाँ, टेसिल, ठीकहाँभवानीपुर, डंडेली, डगोता, डाकपत्थर, डाबच, डाबलाकलाँ, डिगरीस, डिगवाडील, डिचोली, डिडवाड़ी, डुगरी, डुमरपानी, डुमरवार, डूँगरपुर, डूँगला, डेढ़गाँव, डोरण्डा, ढकलगाँव, ढालपुर, ढोसर, तड़ीगाँव, तपोभूमि, तर्रा, तल्ली-बमौरी, ताकी, ताखलाकलाँ, ताजपुर, तालवारा, तालीकोटी, तासगाँव, ताहाचल (नेपाल), तिंसरा, तिकुनिया, तितरिया, तिमारपुर, तिलयत, तीखमपुर, तुमकूर, तुसरा, तेंदूखेड़ा, तेजापुर (झलिया), तोंडापुर, थतिया, थाना, थिरौला, दरभंगा, दरियापुर, दाऊदनगर, दाऊदपुर, दादरी, दारमाधो, दार्जिलिंग, दिग्रस, दिदावली, दिल्ली, दुर्ग, दुर्गाडीह, दुर्गापुर, देवखैरा, देवखोह, देवजरा, देवढ़ी, देवरीबाहरमऊ, देवलीकलाँ, देवास, देहरादून, दैतड़ीआला (नेपाल), दोघट, दोहत्रा, दौसा, धनगाँवा, धनोदिया, धानोरा, धरगाँव, धवाली, धामपुर, धामोरी, धारीमाटी, धुंधीकटरा, धुलिया, नईदिल्ली, नगलाकंचन, नगूरां, नचरौला, नयागाँव, नरगोड़ा, नरसिंहपुर, नरहन, नरही, नर्रा, नरौरा, नलका, नल्लजर्ला, नवरंगपुर, नवरगाँव, नवलगढ़, नवसारी, नवीनगर, नागपुर, नाचना, नाथपुर, नापासर, नायला, नारणमाद, नारदागंज, नारायणपुरा, नारी, नारेहड़ा, नावडीह, नावापार, नाहन, नाहापाड़ा, निटर्रा, नूरमहल, नोनियापट्टी, नोयडा, नौगाँव, न्हावी, पंचकूला, पंचेवा, पंतनगर, पकरहट, पचमह, पचरूखिया, पचौरी, पटना, पटौदी, पतलुकी, पदमपुर, पद्मा, पनवाड़, पनारापारा, पनैला, प० पिपरी, परजेहबाजार, परदेशीपुरा, परनाली, परमेश्वरपिपरी, परवानू, परसरमा, परसरामपुरा, परासी, पलेरा, पांडुकेश्वर, पांडेटोला, प्रांसली (मीर), पाटवा, पाढम, पानापुर, पालवी, पाली, पाली-मारवाड़, पाले, पावटा, पिंजौर, पिथौरागढ़, पिनना, पिपरसमा, पिपरा, पिपरिया, पिपरीगहरवार, पिपरोली, पिलखुवा, पिलौदा, पीलीबंगा, पुन्हान, पुरबियाटोला पजाबा, पुरी, पूर्वीकरियापाथर, पेशोक, पैंची, पैकिन, पैनियाहिम्मत, पोंडी, पोखरैड़ा, पोड़ी, पोरबन्दर, पोलायखुर्द, पोलाय-छोटी, फतेहनगर, फतेहपुर, फरदहा, फरीदाबाद, फरूखनगर, फरूखाबाद, फलोदी, फागलक, फागी, फाजिलका, फिरोजाबाद, फुलेरा, फैजाबाद, बंगा, बकेवर, बगउच्छबाजार, बगासपुर, बज्जू, बटईकोल, बडली, बढ़ेडा, बड़गाँव, बड़गाँव (तुर्क), बड़वाह, बड़ाबन्द, बड़ीसादड़ी, बड़ैरा, बनवार, बनवारी बसन्त, बबराला, बम्बई, बरगढ़, बरगदही-बसन्त, बरतुण्डा, बरनाला, बरवाँ, बरात, बरेली, बरौंधा, बरौली, बलठीहा, बलरामपुर, बल्टीकरी, बल्ला, बलुआ, बसदेवा, बसन्त, बहमा, बाँकी, बाँगरोद, बाँदा, बाँदीकुंई, बाँसजालिया, बाँसातारखेड़ा, बागेदूबर, बाडीनार, बाढ़, बाड़मेर, बाधवान, बानखेड़, बानूछपरा, बाबरपुर, बाबरपुरमंडी, बारी, बारू, बालापुर, बालेसर, बालोतरा, बासदेवा, बावड़ियाकांजी, बासौदा, बिजुर, बिझड़ी, बिठुना, बिरलानगर, बिलासपुर, बिशाड़, बिसून्दनी, बीकानेर, बीड, बीदर, बीना, बीनादेवरी, बीरसिंहपुर-पाली, बुंदला, बुंदेली, बुधगाँव, बुद्धाराजा, बूढ़ादीत, बूढ़ादीन, बेंगलोर, बेतिया, बेनीकासा, बेराघाट, बेलरगाँव, बैतूल, बैरमपुर, बैलूरमठ, बोकठा, बोकारोस्टील-सीटी, बोलारम, बोहियों, बौलाई, ब्रह्मनगर, ब्रह्मपुर, ब्यारा, ब्यावरा, भंजनगर, भगवरी, भगवानपुरा, भजींट, भटगाँव, भटिण्डा, भडूस, भमावद, भरतपुर, भरदागोड़, भरावदा, भरुआ-सुमेरपुर, भरूच, भवइचा, भद्रपुर (नेपाल), भवाली, भादरा, भिण्ड, भिवानी,

भीमावरम, भूमकहर, भुलसी, भुवनेश्वर, भुसावल, भूपालपुरा, भेड़वन, भैंसदेही, भैंसा, भैसाना, भोपाल, भोरंज, मंदर, मउधिया, मऊगंज, मऊजंक्शन, मखमेलपुर, मगरापर, मझनपुर, मझाट, मझेवला, मडलौडा, मढ़पुरा, मणिपुर, मथुरा, मद्रास, मधुपुर, मधेपुर, मनवाड, मनिगाँव, मलकाजगिरी, मलाकनारा, मलकापुर, मलया, मलगाँव, मस्मोली, महना, महनियावास, महम, महमूदचक, महराना, महरोली, महादेवपुरी, महासमुन्द, महिन्दवाराबाजार, महुआखेड़ा, महुआरा, महुड़र, महू, महेशपुरराज, मांडल, माधवपुर, मानसा, मानिकपुर, मायागढ़ीस्टेट, मारवाड़ वागरा, मालंडरेक, मालगाँव, मालपुर, मालीपुर, मालेरकोटला, मीठेपुर, मीनापाड़ा, मीरजानहाट, मीरपुर, मुंगेर, मुंगो, मुंडीवाड़ा, मुगलसराय, मुजफ्फरपुर, मुरली चन्दवा, मुरादनगर, मुली, मुल्लानपुरमंडी, मुल्लापुर, मूंधी, मेड़िया (चुनार), मेरठ, मेहकर, मैठानी, मोतीनगर, मोतीहारी, मोर्शी, मोलनापुर, मोहननगर, मोहाना, मौजमाबाद, मौहार, म्याऊ, यमुनानगर, यवतमाल, युसुफपुर, येवदा, रकसवाँ, रघुनाथपुरा, रतलाम, रबूपुरा, रमपुरवाँ, रसीदपुरा, रसूलपुर, रहुआसंग्राम, राँची, राउरकेला, राकमौरा, राजकोट, राजगढ़, राजगांगपुर, राजचैनपुर, राजनाँदगाँव, राजपिपरी, राजमहल, राजुराबाजार, राजेश्वर, राजोद, रानीखेत, रानीटोला, रानीबाग, रानीपुर, रानीला, रामगढ़कैंट, रामगढ़ी, रामथल, रामद्वारा, रामनगरदियारा, रामनगर (सिरसा), रामपुर, रामपुरकलाँ, रामपुरकाँकर, रामपुरकुँवर, रामपुरखजुरिया, रामपुरवाँ, रामपुरवाँ बाजार, रामपुरा, रामसीन, रायगढ़, रायपुर, रायसिंगनगर, रावतभाटा, रावतपुर, रावतसर, रासना, रासोल, ऋषिकेश, रीवाँ, रुड़की, रूद्रपुर, रेवाड़ी, रेशोक, रैपुरादीक्षित, रोहतक, रौतिनियाँ, रौनियाँ, लंका, लक्ष्मीपुर-ककढ़ियाँ, लक्ष्मीवाड़ी, लखनऊ, लखीमपुर, लगरगवाँ, लवाइच, लश्कर, लश्करी, लाखनडिहरा, लाखेरी, लाडनूँ, लाडवा, लातूर, लाम्बाहरिसिंह, लालकुआँ, लालगढ़, लालसिंग, लावनी, लाहपुरा, लीलोद, लुधियाना, लुहारी, लैलूँगा, लोईंग, लोहंडी, लोहार्दा, वंदिगे, वर्धा, वाराणसी, विकमपुर, विकाराबाद, विषाद, विष्णुपुर, शंकरनगर, शकरा, शहद, शहरना, शाहपुर-टहला, शाहाबाद-मरकहद, शाहाबाद-मारकंडी, शाहोपुर-बरमा, शिंकारपुर, शिकारीचन्दा, शिमला, शेटगेरी, शेरूणा, श्रीकरनपुर, श्रीगंगानगर, श्रीधाम, श्रीपुर, श्रीरामपुर, संडिला, सन्ना, सम्बलपुर, सम्पूर्णानगर, सकीट, सगवाली, सतना, सनकुंई, सन्हौली, सफीदोंशहर, सफीपुर, समस्तीपुर, समोदा, सरतरी, सराड़ा, सरोत्री, सलकनपुर, सलोरी, सवाई, सहलानवी-सहलाना, सांगानेर, सांचोर, साखरवाड़ी, सातनेर, सामलगढ़, सामी, सारूढाब, सालमगढ़, सावनेर, सिंगोली, सिंहपुरा, सिकन्दरपुर, सिकन्दराबाद, सिकराली, सितारगंज, सिद्धरामपुर, सिमरिया, सिमरी, सिमलाबहाल, सिरसुं, सिरौंज, सिलीगुड़ी, सिवधर, सिवनी, सिसोटार, सीकर, सीतापुर, सीथल, सीसवाली, सुनाम, सुपौल, सूलिया, सेजी, सेठा, सेमरौर, सोनई, सोनपुरा, सोप, सौड़खुर्द, सौरछयाँ, स्थाणा, हंसराजपुर, हँसुवा, हजारीबाग, हटनी, हनुमन्ती, हमीरपुर, हरदा, हरदाग, हरनी, हरमू, हरिद्वार, हरिपुर-डीहटोल, हरियाडा, हसनपुर, हसुआहा, हाँगरी, हाँफा, हाजीपुर, हापुड़, हाबड़ा, हिंगोली, हिण्डोरिया, हीरामा, हुलेट, हेलंग, हैंठीवाली, हैदरगढ़, हैलना, होशियारपुर, होसिर, ५६ ए० पी० ओ०, ९९ ए० पी० ओ०।

जिसका हृदय ईश्वरको पानेके लिये तरस रहा है, उसीका जन्म धन्य है, उसीकी माता धन्य है। कारण, उसका सर्वस्व तो उस ईश्वरमें समाया हुआ है।

जो मनुष्य ईश्वरमें लीन रहता है और उसीको सुनने तथा देखनेयोग्य समझता है, उसने सब कुछ सुन लिया, देख लिया और जान लिया है।

यदि तुम जगत्‌की खोजमें जाओगे तो जगत् तुमपर चढ़ बैठेगा, उससे विमुख होओगे तभी उसे पार कर सकोगे।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गायोंको चारा खिलानेका सुफल

मेरे एक घनिष्ठ मित्रने अपनी एक आपबीती घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

लगभग बीस वर्ष पूर्वकी यह घटना है। मेरा ढाई-तीन सालका बालक अरविंद एक दिन गलियारेमें खेलता हुआ अकस्मात् ही गायब हो गया। उसे ढूँढ़नेका अथक परिश्रम किया गया, किंतु वह नहीं मिला। मैं सर्वथा असफल हो गया और परमात्माका विधान मानकर शान्त होकर बैठ गया। मेरी पत्नी तो लगभग अर्धविक्षिप्त-सी रहने लगी। पाँच वर्षपूर्व मैं अपने मकानके बाहर सिर नीचा किये कुछ पढ़ रहा था। अचानक चार-पाँच नौजवानोंको उधरसे जाते देखा। मैंने उनसे पूछा—'कहो भाई! किधर चक्कर लगा रहे हो?' एकने कहा—'चाचाजी! गोपाष्टमीका मेला है न? उसीके लिये चंदा इकट्ठा करने निकले हैं। आप भी इस पावन यज्ञमें कुछ समिधा डालिये।' एक आन्तरिक प्रेरणावश मैंने उन्हें २०१-०० रुपये देते हुए कहा कि रसीदपर मेरा नाम न लिखना। युवक-मण्डली मुझे अनेकानेक धन्यवाद देकर चली गयी।

अरविंदको लापता हुए लगभग दो दशक बीत गये थे। कभी-कभी मेरा मन बुरी तरह कचोट उठता कि सम्भवतः मैंने अपने पितृ-कर्तव्यको पूरी तरह नहीं निभाया। मुझे उसे और भी ढूँढ़ना चाहिये था, किंतु अब तो बहुत समय व्यतीत हो चुका था। अब तो मुझे यह भी विश्वास हो चला था कि अब वह इस संसारमें ही नहीं है। ऐसे ही मनस्तापमें मेरे दिन बीत रहे थे। चन्दा देनेके लगभग एक माहके पश्चात् मुझे स्वप्नमें एक गैया एक बच्चेको मुँहमें दबाये भागी चली आती हुई दिखायी दी। उसने बच्चेको मेरे पैरोंके पास लाकर रख दिया। मैंने देखा कि वह मेरा ही लाल, कलेजेका टुकड़ा अरविंद था। अरविंदके कपोलोंमें भाँवर पड़ती थी और उसकी केशराशि लहरदार थी, इन दोनों बातोंसे मैं अरविंदको तत्काल पहचान गया। मेरी चीखके साथ स्वप्न टूट गया। मैं पसीने-पसीने होकर उठ बैठा। मेरी भयानक चीख सुनकर मेरे अन्य बच्चे और पत्नी आ गयीं। मैंने उन्हें स्वप्नकी बात नहीं बतायी। वे मुझे ढाँढस बँधाकर अपने-अपने कमरोंमें चले गये। मुझे उस रात फिर नींद न आयी। मैं विचारोंमें डूब गया कि क्या अरविंद अभी भी जीवित हो सकता है। नहीं-नहीं, यह केवल एक स्वप्न है और स्वप्न भी कभी सच हुए हैं? बात आयी-गयी हो गयी।

मेरी उदासीनता और बढ़ गयी। मैंने व्यापारसे भी थोड़ा हाथ खींच लिया। हाँ, एक नया कार्यक्रम आरम्भ हो गया। अब मैं जब भी बाजारके किसी इजकेवालेको—(चारा-घास बेचनेवालेको) देखता तो उसकी सारी पूलियाँ खरीद लेता और उन्हें गैया मैयाओंको खिला देता। कुछ तो मेरे पेट्रोल-पम्पपर नित्यप्रति आने भी लग गयीं। मेरे बड़े बच्चे मेरे इस बीस-पचीस रुपये प्रतिदिनके नये खर्चके प्रति तटस्थ रहते। एक दिन रात्रिमें मैंने बड़े ही करुण-स्वरमें गोमातासे प्रार्थना की—'हे माता! मेरे उस पहलेवाले स्वप्नका क्या अर्थ है? क्या वह केवल एक स्वप्न ही है या उसका कोई अर्थ है?' सात दिनके पश्चात् पुनः स्वप्न-दर्शन हुआ—गायें एक खेतमें चर रही हैं, एक बोर्डपर अहमदाबाद लिखा है। पुनः नींद उचट गयी, अहमदाबादका क्या अर्थ है? हे भगवन्! यह मैंने २०१.०० रु० देकर और रजका (चारा-घास) खिलाकर क्या विपत्ति मोल ले ली। क्या अरविंद अहमदाबादमें है? परंतु अहमदाबाद कुछ छोटा-मोटा शहर तो है नहीं, तथापि अरविंदको पहचाननेकी भी समस्या थी। तीन सालका बच्चा अठारह सालका हो गया होगा। मैं उसे कहाँ-कहाँ ढूँढूँगा, कैसे ढूँढूँगा? आदि-आदि विचारोंमें दिन व्यतीत होने लगे। हाँ, चारा खिलाने और गायोंको

सहलानेमें मुझे बड़ा आनन्द आने लगा। ऐसा आनन्द जीवनमें पहले कभी अनुभव नहीं किया था। मैं यह करुण प्रार्थना प्रतिदिन करने लगा—'माँ! इन स्वप्नोंका अर्थ समझाओ और मेरी सहायता करो।'

रविके रथका पहिया घूमता रहा। काले-धवले पंखोंपर सवार होकर समय उड़ता रहा। एक दिन पेट्रोल-पम्पपर एक चारेका ट्रक आया। ड्राइवर चाय पीने चला गया। ट्रकपर दस-ग्यारह गायें जुट गयीं और मुँहसे खींच-खींचकर चारा खाने लगीं। चाय-पीते खलासीने देखा तो दौड़ा आया और लगा डंडेसे गायोंको पीटने। मैं अपनी कारसे किसी कामसे जा रहा था। मैंने खलासी और ड्राइवरसे ट्रकके विषयमें बात की। उन्होंने चारा बिकाऊ बताया। मैंने ट्रक खरीद लिया और दूसरे दिन सारा चारा गायोंको डलवा दिया। शहरकी डेढ़-दो सौ गायें चारेपर टूट पड़ीं। अहा! कैसा रस आया। मैं ब्रह्मानन्दमें डूब गया। लाखों रुपये कमानेपर मुझे वह आनन्द प्राप्त न हुआ जो गोमाताओंको चारा खिलानेपर हुआ। रात्रिमें पुनः स्वप्नदर्शन हुआ—गायें एक हरे-भरे मैदानमें चर रही हैं। एक गाय एक खंभेसे सींग खुजला रही है। खंभेपर एक तख्ती लगी थी। तख्तीपर अहमदाबाद लिखा था। खुजलाते-खुजलाते तख्ती टूटकर मेरे सिरपर पड़ी। मैंने अचकचाकर तख्तीको दूर फेंका । तख्तीकी दूसरी ओर ठक्कर बापा नगर लिखा हुआ था।

स्वप्न-भङ्ग हुआ और मेरे हृदयमें बिजली-सी कौंध गयी। मैं स्वप्न-दर्शनका उद्देश्य कुछ-कुछ समझ गया। मैंने घरवालोंको अहमदाबाद किसी व्यापारिक कार्यसे जानेकी बात बता दी। मेरे अंदर आशाकी एक लहर हिलोरें लेने लगी। मैं चल पड़ा और अहमदाबाद पहुँचकर एक होटलमें ठहर गया। तीन बजे उठकर साढ़े चार बजेतक ठक्कर बापा नगर जा पहुँचा और दिनभर यों ही घूमता रहता। मुझे वहाँ रहते लगभग ग्यारह दिन बीत गये। एक दिन मैंने कहा—'माँ! मेरे साथ यह कैसा विनोद कर रही हो। क्या मैं बालूसे तेल निकालनेकी सोच रहा हूँ? क्या मैं सरकंडेके टुकड़ेसे आकाशको नापने-जैसा प्रयास तो नहीं कर रहा हूँ?'

बारहवें दिन मैंने बाजारमें दो युवकोंको जोर-जोरसे बोलते, फिर धक्का-मुक्की करते और फिर एकको दूसरेके चाकू मारते देखा। मारनेवाला स्कूटरपर बैठकर भाग चला था। दूसरा सीना पकड़े जमीनपर लहूलुहान पड़ा था। मैंने तुरंत उस लड़केको अस्पताल पहुँचाया और रातमें वहीं ठहर गया। डॉक्टरोंने दौड़-धूप की और बताया कि स्थिति गम्भीर है। मैं अनमना-सा बैठा हुआ सुनता रहा। मैंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। मुझे आवश्यकता भी क्या थी? बड़े शहरोंमें यह तो आम बात है। तीन बजे मुझे झपकी आ गयी। उस समय कोई कह रहा था—'इस नौजवानको ध्यानसे देखो।' मैं उठ बैठा और उसे ध्यानसे देखने लगा। अरे, वही कपोलोंके भँवर और लहरदार केशराशि। मैं चीख पड़ा। मैंने अस्त-व्यस्ततामें उसकी कमीज ऊपरकी ओर उठायी और बायीं पसलीको देखा। अरविंदके उस स्थानपर लहसुन था और इसके भी था। मेरा समाधान हो गया। मैं डाक्टरोंकी ओर लपका और मैंने किसी भी मूल्यपर इस नौजवानको बचानेकी प्रार्थना की। अबतककी मेरी तटस्थता और अब घबराहटको देखकर डॉक्टर विचारमें पड़ गये। दूसरे दिन अरविंदको चेतना आयी और पाँचवें दिन मैं उसे अस्पतालसे विदा करा लाया।

घनिष्ठ मित्रकी हिचकियाँ बँध गयीं। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे आगे कुछ न बोल पाये। थोड़ी देर पश्चात् बस इतना ही बोले—यह मेरे सामने स्पष्ट हो गया कि प्राचीन ऋषियोंने गायको ही देवोपम स्थान क्यों दिया है। वह करुणाका काव्य है। इस निरीह प्राणीमें करुणा-ही-करुणा भरी है। वह हमारे लिये द्वितीय माताके समान है।

इसीलिये श्रीरामकृष्ण परमहंसने कहा—'गङ्गाजल जल नहीं, श्रीवृन्दावनकी रज धूल नहीं, पुरी-धामका

महाप्रसाद अन्न नहीं और गाय मात्र सींग-पूछवाला जानवर नहीं—ये चारों ब्रह्मस्वरूप हैं।'—गोपालकृष्ण जिन्दल

(२)

भूखा भूख मिटाता है

बस आनेमें अभी दस मिनटकी देर थी। पू० विनोबाजीके भाषणसे प्रभावित हुए हम चार-पाँच मित्र प्रेम, मानवता, करुणा आदि शब्दोंपर चर्चा करनेमें इतने तल्लीन हो रहे थे कि आस-पास क्या हो रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं था।

सहसा हृदयको मानो चीर डालेगी, ऐसी करुण आवाज सुनायी दी। हमने चौंककर पीछे देखा। धँसी हुई तेजहीन आँखें, झुर्रियाँ पड़े चेहरेपर बढ़ी दाढ़ी, हड्डियाँ गिनी जा सकें, ऐसा दुबला शरीर, देहपर फटे-टूटे चिथड़े डाले लगभग साठ वर्षका एक बूढ़ा हमारी ओर दौड़ा आ रहा था। होहल्ला मचाती बालकोंकी टोली उसे हैरान कर रही थी।

'मैं पागल नहीं हूँ, चोर नहीं हूँ, भगवान्‌के नामपर मुझे मारो मत। मैं गरीब हूँ, दुःखी हूँ, दो दिनोंका भूखा हूँ।' करुणाकी चर्चा करते हुए हम उसकी ओर देखते रह गये। 'हाय राम! भगवान्‌के नामपर इस भूखेको कुछ टुकड़े दो!'

आँसू-भरी इस आहपूर्ण वेदनाको सुननेको कोई तैयार न हुआ। अपने सुखीपनमें रचे-पचे सभ्य समाजके प्रतिष्ठित लोग उसे धमका रहे थे। 'गोल्ड फ्लैक' (सिगरेट) सुलगाते हुए एक भाई बोल उठे—'चला जा! पता नहीं, ऐसे कितने ढोंगी-फरेबी चले आते होंगे। हरामकी हड्डी हो गयी। आगे चल, दुर्गन्ध आ रही है।'

हम चार-पाँच मित्र इकट्ठे करके उस वृद्धको कुछ देनेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें ही बगलके खोमचेवालेके हृदयमें राम जाग उठा। पावरोटीके दो बड़े-बड़े टुकड़े देते हुए उसने प्रेमसे कहा—'लो बाबा, यह खा लो।'

काँपते हाथों उस वृद्धने पावरोटी खाना आरम्भ किया। चार-पाँच ग्रास खाये होंगे कि 'ओ मा' पुकारता हुआ एक आठ-नौ वर्षका पंगु बालक नंगे बदन आँसूभरी आँखोंसे कुछ माँगने आ गया। उसे कुछ देनेकी बात तो दूर रही, किसीने उसकी ओर ताका ही नहीं। कुछ आशासे करुण चेहरा किये वह बच्चा उस वृद्धके पास खड़ा रहा। उसने उस बच्चेसे बड़ी मिठासके साथ कहा—'अरे भूखा है? बोलता क्यों नहीं? ले···· खा······।' यों कहकर मन्द-मन्द हँसते हुए उस बूढ़ेने पावरोटीका एक टुकड़ा उस बच्चेको दे दिया। उसके चेहरेपर आतमसंतोषकी रेखाएँ स्पष्टरूपसे अङ्कित हो गयीं।

मैं इस दृश्यको देखता ही रह गया। कैसा मौन उपदेश था। कैसा प्रेरक संदेश था। हम अघाये हुए होनेपर भी भूखेको कुछ खिलानेमें असमर्थ थे। उधर वह बूढ़ा स्वयं भूखा रहकर दूसरेकी भूख मिटा रहा था। उसके विशाल हृदयके सामने हमारा हृदय नितान्त नगण्य था। भौतिक क्षेत्रमें आगे बढ़े हुए हम आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत पीछे थे। पर वह बूढ़ा तो आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत आगे बढ़ चुका था।—चन्द्रकान्त बी० त्रिवेदी

(३)

अन्तरात्माकी आवाज

वर्षों पहलेकी बात है। सौराष्ट्रके एक छोटेसे गाँवमें हमारे पड़ोसमें एक ब्राह्मण सद्‌गृहस्थ रहते थे। वे पोरबंदर-गोशालाके लगान-वसूलीका काम करते थे। इसलिये उन्हें कई बार इधर-उधर बाहर जाना पड़ता था।

एक बार वे कलकत्ते जा रहे थे। रास्तेमें दिल्ली-स्टेशनपर उतरते समय उनकी जेब कट गयी। इस बातको लगभग दस वर्ष बीत चुके। उन्हें इस घटनाका स्मरण भी न रहा। इसी बीच एक दिन एक डाकिया तीस रुपयेका मनीआर्डर लेकर इनके घर पहुँचा। कहींसे मनीआर्डर आनेकी कल्पना ही नहीं थी। अतः इन्होंने समझा कि डाकियेकी भूल हुई होगी। पर जब इन्होंने फार्म लेकर उसकी कूपनपर लिखी बातें पढ़ीं, तब तो वे एकदम आश्चर्यमें डूब गये। उसमें लिखा था—

'बड़ी असहनीय परिस्थितियोंके कारण आपका पाकेट मेरे हाथ लगा था। उसे आज लगभग दस वर्ष हो

चुके हैं। बहुत समयसे मेरी आत्माकी गहराईसे आवाज आ रही थी और मेरे दिलमें सदा शूल-सी चुभती रहती थी। आज उस पाकेटमें निकले हुए बीस रुपयोंके साथ दस रुपये और मिलाकर कुल तीस रुपये आपकी सेवामें भेजकर मैं आपके ऋणसे मुक्त होता हूँ। आपका पता मुझे पाकेटमें रखे एक कागजपर लिखा मिला था।'

अन्तरात्मासे सदा ही आवाज तो आया करती है, फिर चाहे मनुष्य उसे सुने या न सुने।—(अखण्ड आनन्द)

मनन करने योग्य

[कर्मका फल हाथोंहाथ]

बात पुरानी है, परंतु है सच्ची। पुराने पंजाबके मुजफ्फरगढ़ जिलेमें जंगलके सहारे एक छोटा-सा ग्राम था। वहाँ रामदास नामक एक दरजी रहता था। आस-पासके जमींदारोंके परिवारोंके कपड़े सीकर वह अपने परिवारका भरण-पोषण करता था।

रामदास सीधा-सच्चा भक्त था। उसका साधन था कीर्तन। भगवन्नामकीर्तन और भगवान्‌की लीलाओंका गान भी चलता रहता और कपड़े भी सिये जाते। कभी कपड़ा सीनेकी मशीनकी टिक-टिकके साथ नामोच्चारणका तार बँध जाता तो कभी हाथकी सिलाईके साथ लीला-पदोंका गान होता। कलियुगमें अनेक दोष हैं, किंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण भी है—वह यह कि केवल कीर्तनसे ही बेड़ा पार हो जाता है।

नाम-कीर्तनसे उसका हृदय निर्मल हो गया था। अतः उसका श्रीभगवान्‌से प्रेम तथा संसारसे वैराग्य हो गया। उसका जीवन शान्तिमय तथा संतोषपरायण हो गया। वह हर समय प्रभु-कृपाका अनुभव करने लगा।

एक मुसलमान पड़ोसीको एक हिंदूका शान्ति-संतोषसे रहना बुरा लगा। वह सोचता था कि यदि इस काफिरकी मशीन न रहे तो यह अपनी आजीविका अर्जन न कर सकेगा, तब यह और कहीं चला जायगा।

एक दिन उचित अवसर मिलनेपर उसने भक्तजीकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरा ली।

भक्तजी सोचने लगे कि 'मेरे प्रभुको मशीनकी टिक-टिक अच्छी नहीं लगती होगी, तभी तो उन्होंने उसे उठवा दिया है।' वह प्रसन्नचित्तसे हाथसे ही कपड़े सीने लगा। उसने मशीनके चले जानेकी सूचना भी पुलिसमें नहीं दी।

इधर भगवान्‌की भक्तवत्सलता जाग्रत् हुई। उनसे भक्तकी यह हानि न देखी गयी। चोरके दायें हाथकी हथेलीमें एक भीषण फोड़ा निकला, जिसमें इतनी पीड़ा थी कि न दिनको चैन, न रातको नींद आती थी। दूसरे ही दिन उसे कोटउट्‌चूके सरकारी अस्पतालमें जाना पड़ा। डॉक्टरने नश्तर लगाकर पट्टी बाँध दी। औषध-प्रयोगसे जब फोड़ा कुछ अच्छा होने लगता, तब दूसरा फोड़ा निकल आता। चिकित्सक डॉक्टर उद्विग्न था। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि सारे प्रयत्न करनेपर भी उसका हाथ क्यों नहीं अच्छा होता। अन्तमें डॉक्टर इस निश्चयपर पहुँचा कि रोगीने अवश्य ही इस हाथसे कोई घोर पाप किया है।

उसने रोगीसे स्पष्ट कह दिया कि तुमने इस हाथसे कोई घोर पाप किया है, जिसके कारण मेरे अनुभवसिद्ध औषधोंका प्रयोग करनेपर भी लाभ नहीं होता। तुम्हें अल्लाहसे अपना अपराध क्षमा कराना होगा।

रोगी समझ गया कि रामदासकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरानेसे ही उसे कष्ट भुगतना पड़ा है। उसने ग्राममें आकर उचित अवसरपर मशीन भक्तजीके घरपर रख दी और उसके हाथका फोड़ा भी शीघ्र ही ठीक हो गया।

मशीन घरपर देखकर भक्तजी कहने लगे कि श्रीठाकुरजीको फिर टिक-टिक सुननेकी इच्छा हुई होगी।

——श्रीनिरंजनदास धीर

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। भारतसे बाहर अन्य देशोंमें तो यह स्थिति और भी भयानक है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्व-शान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नामस्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप, कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण'के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गतवर्ष ३० करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। प्रतिवर्षकी भाँति यद्यपि इस वर्ष भी लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नामका जप किया है तथा लगभग सवा चौबीस करोड़ मन्त्रनाम-जपकी सूचनाएँ विभिन्न स्थानोंसे हमें प्राप्त हुई हैं, जिन्हें इसी अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित किया गया है, परंतु पिछले वर्ष यह नाम-जपकी संख्या साढ़े उन्तीस करोड़के लगभग थी। इस वर्ष इस संख्यामें वृद्धिकी अपेक्षा कमी आयी है। इसके कई कारण हो सकते हैं जिसमें एक कारण यह भी हो सकता है कि पिछले वर्ष नाम-जपका निवेदन सदस्योंतक पहुँचानेमें कुछ विलम्ब हो गया था। इस वर्ष इसे समयसे पूर्व पहुँचानेका प्रयास किया जा रहा है। अतः आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष ३० करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप और अधिक उत्साहसे करना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० २०४६ तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण'के

भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

१-जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क २३।११।१९८८ ई०) बुधवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४६ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

२-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३-एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

४-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

५-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

६-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

७-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये नामकी नहीं, उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्रजपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखने चाहिये।

८-प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

९—जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

१०-सूचना संस्कृत, हिंदी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

११-सूचना भेजनेका पता-'नामजप-कार्यालय', द्वारा-कल्याण-सम्पादकीय-विभाग, गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस २७३००५ (गोरखपुर) है।

प्रार्थी—
राधेश्याम खेमका
सम्पादक-'कल्याण'

जबतक तुम्हारे मनमें संसार बसा हुआ है, तभीतक भगवान् तुमसे दूर हैं। संसारकी ओरसे तुम्हारी दौड़ रुकते ही तुम जाओगे ईश्वरकी ओर, जिससे तुम्हारे अन्तःकरणमें अवश्य प्रकाश होगा। उस प्रकाशमें तुम्हें ईश्वरके सिवा और न कोई दिखायी देगा और न स्मृति अथवा वाणीमें ही आयेगा। यही योगकी वास्तविक अवस्था है।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्ध पुराण-साहित्य

[इच्छुक सज्जन मँगाकर लाभ उठायें]

१-संक्षिप्त शिवपुराण

लगभग २६ वर्ष पूर्व सन् १९६२ में 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' प्रकाशित हुआ था जिसे 'कल्याण'-प्रेमी पाठकों और सर्वसाधारण श्रद्धालु आस्तिक सज्जनों ने सहृदयतापूर्वक अपनाया तथा अत्यधिक पसंद किया था। उस समयकी बढ़ती हुई लोकप्रियता और निरन्तर माँगके फलस्वरूप इसका १,३१,००० का प्रथम संस्करण बहुत शीघ्र समाप्त हो गया। अतएव पुनः १५,००० का दूसरा संस्करण और भी छापना पड़ा। पुनर्मुद्रणके लिये वर्षोंसे प्रेमी पाठकोंके निरन्तर प्रेमाग्रहको ध्यानमें रखकर अब भगवान् शिवकी कृपासे उक्त विशेषाङ्कका पुस्तकाकार नया संस्करण २२''× ३०'' के डिमाई आकारमें तैयार किया गया है। ७०० पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्रीमें परात्पर परब्रह्म परमात्माके कल्याणमय शिवस्वरूपके तत्त्व, रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार और भगवान् शिवकी पूजा-पद्धतिका बड़ा ही विशद तथा रोचक वर्णन है। रंगीन चित्र ४, सादा चित्र १२, रेखा-चित्र १३८ इसकी विशेषताएँ हैं। मूल्य ३०.०० (तीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १०.०० अतिरिक्त।

२-संक्षिप्त पद्मपुराण

यह पद्मपुराणका संक्षिप्त भावानुवाद है। इसमें भगवान् विष्णुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होनेके कारण यह वैष्णवोंको अधिक प्रिय है। भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ-साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पर रूपोंका भी इसमें विस्तृत मनोहारी वर्णन है। पद्मपुराणका संक्षिप्त अनुवाद प्रथम बार सन् १९४४में 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था, किंतु उस समय 'कल्याण' की ग्राहक-संख्या बहुत कम होनेसे बहुसंख्यक जन उसके अध्ययन-लाभसे वञ्चित रह गये। अतः इसके पुनर्मुद्रणके लिये प्रेमी पाठकोंके विशेष प्रेमाग्रहको दृष्टिगत रखकर ही अब उक्त विशेषाङ्ककी अविकल कथा-सामग्री २२''× ३०'' डिमाई आकारमें, सजिल्द ग्रन्थ-रूपमें छापकर पाठकोंकी चिरकाङ्क्षित मनोऽभिलाषाकी पूर्ति करनेका प्रयास किया गया है।

पृष्ठ-संख्या ८८८, रंगीन चित्र १ तथा लीला-प्रसङ्गोंके अनुसार यथास्थान अनेकों रेखा-चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य २५.०० (पचीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १०.०० अतिरिक्त।

३-संक्षिप्त महाभारत

महाभारत संस्कृत वाङ्मयकी एक अमूल्य निधि है। इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा जाता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके महान् उपदेशोंके अतिरिक्त प्राचीन घटनाओंका सच्चा उल्लेख तो है ही, साथ ही ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म आदि विषयोंका विशद एवं सारगर्भित विवेचन भी है। सम्पूर्ण ग्रन्थका सरल हिंदीमें संक्षिप्त अनुवाद सजिल्द दो खण्डोंमें उपलब्ध है। कुल पृष्ठ-संख्या १६९१, रंगीन चित्र २, रेखा-चित्र ९७८, मूल्य ४४.०० (चौवालीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १५.०० अतिरिक्त।

४-श्रीहरिवंशपुराण (सटीक)

महाभारतका खिल भाग—हरिवंश महाभारत-ग्रन्थका ही अन्तिम पर्व है। इसके श्रवण तथा पारायणकी बहुत महिमा है। वंश-वृद्धि या पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे विधिपूर्वक हरिवंश-श्रवणका विधान शास्त्रोंमें बतलाया गया है। इसमें भगवद्भक्ति तथा भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बद्ध एवं अन्यान्य ऐसी रोचक कथाएँ हैं जो अन्यत्र नहीं मिलतीं। सम्पूर्ण ग्रन्थ मूल श्लोकोंसहित हिंदी-अनुवादसे संवलित है। पृष्ठ-संख्या ११४२, भावपूर्ण सुन्दर रंगीन चित्र ८, मूल्य ३५.०० (पैंतीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १२.०० अतिरिक्त।

५-मत्स्यपुराण (सटीक)

सम्पूर्ण मत्स्यपुराण सटीक रूपमें तीन खण्डोंमें प्राप्य है, जो 'कल्याण' के दो विशेषाङ्कों तथा पाँच परिशिष्टाङ्कोंके रूपमें दो वर्षों (सन् १९८४ तथा सन् १९८५)में प्रकाशित हुआ था। इसकी अब कुछ सीमित प्रतियाँ ही बची हैं। इसमें भगवान्के विभिन्न अवतार तथा पुण्यप्रद लीला-कथाओंके अतिरिक्त धर्म, दर्शन, व्रत, तीर्थ, राजनीति, ज्योतिष, स्वप्न-विचार तथा वास्तु-शास्त्र इत्यादि ज्ञान-विज्ञान एवं प्राचीन इतिहास आदिका प्रचुर ज्ञानवर्धक और सुरुचिपूर्ण वर्णन है। इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये, अन्यथा अब इन कुछ ही शेष रह गयी प्रतियोंके भी समाप्त हो जानेपर इसकी सर्वजनोपयोगी पठनीय सामग्रीसे उन्हें वञ्चित होना पड़ सकता है।

पृष्ठ-संख्या ११००, रंगीन चित्र १५, तीनों खण्डोंका कुल मूल्य ४०.०० (चालीस रुपये) मात्र, डाकखर्च ११.०० अतिरिक्त।

६-श्रीमद्भागवत-महापुराण (सटीक)

पुराणोंमें सबसे अधिक प्रसिद्धि, प्रचार और सम्मान जितना श्रीमद्भागवतको प्राप्त है, उतना अन्य किसी पुराणको नहीं है। परम मधुर भगवद्रससे भरा हुआ—'स्वादु स्वादु पदे पदे'—भगवत्प्रेम-रसका छलकता हुआ यह एक ऐसा सागर है, जिसकी कहीं कोई तुलना नहीं है। इसमें सकाम-कर्म, निष्काम-कर्म, साधन-ज्ञान, सिद्ध-ज्ञान, साधन-भक्ति, साध्य-भक्ति, प्रेमाभक्ति आदि सभी साधना-मार्गोंका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ प्रतिपादित किया गया है। इस दृष्टिसे मानव-जीवनके चरम और परम लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति या मोक्ष-हेतु इस आत्म-कल्याणकारी महान् ग्रन्थके पाठ, पारायण, श्रवण, अनुशीलन आदिका आश्रय ही इस घोर कलिकालमें एकमात्र परमोपयोगी साधन है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ मूल पाठ एवं अनुवादसहित सजिल्द दो खण्डोंमें है। मुख्य विषय-वस्तुकी कुल पृष्ठ-संख्या १९९३के अतिरिक्त ४८ पृष्ठोंमें श्रीमद्भागवतकी महिमा, माहात्म्य, पूजन-विधि एवं पाठके विभिन्न प्रयोग आदि उपयोगी सामग्री भी दी गयी है। रंगीन चित्र २, दोनों खण्डोंका मूल्य ६५.०० (पैंसठ रुपये) मात्र, डाकखर्च १६.०० अतिरिक्त।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत (सम्पूर्ण) का केवल हिंदी भाषाका एक विशेष संस्करण—श्रीशुकसुधासागर सचित्र, सजिल्द, बृहदाकार भी उपलब्ध है। मूल्य १००.०० (एक सौ रुपये) मात्र तथा डाकखर्च २०.०० अतिरिक्त।

विशेष—पुस्तक मँगानेवाले सज्जनोंको पुस्तकोंका आर्डर पुस्तक-विक्री-विभाग, गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेपर अग्रिम राशि (पेशगी) सहित भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५